Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय पौधे

895

सुधांशु कुमार जैन

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

भारत—देश और लोग

औषधीय पौधे

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय पौधे

डॉ० सुधांशु कुमार जैन

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

1968 (शक 1890)
द्वितीय संस्करण 1975 (शक 1897)
तृतीय संस्करण 1987 (शक 1908)

डॉ॰ सुधांशु कुमार जैन, 1968

रु॰ 19.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित और मयूर प्रेस, 27, डी॰ एल॰ एफ॰ इण्डस्ट्रियल एरिया, नजफगढ़ रोड, नई दिल्ली-110015 में मुद्रित।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

दो शब्द

जड़ी-बूटियां शब्द सुनते ही हमारे मन में किसी अद्‌भुत अथवा दैवी शक्तिवाली वनौषधि का विचार आता है। हमारे साहित्य में जड़ी-बूटियों द्वारा न केवल असाध्य से असाध्य रोगों की चिकित्सा के विवरण हैं, वरन् उनका अनेक चमत्कारी एवं अविश्वसनीय घटनाओं से भी संबंध मिलता है। अमुक पौधे के बीज को, वशीकरण मंत्र पढ़कर, किसी व्यक्ति पर फेंकना और उसे वश में कर लेना, अमुक जड़ चबा लेने से दीर्घायु का सुख प्राप्त कर लेना, अथवा अमुक रस की दो बूंद मात्र से मृत व्यक्ति को जीवित कर लेने आदि की कथाएं प्रायः सुनने को मिलती हैं। किसी वनौषधि की महिमा का गुणगान करते समय प्रायः यह कहना इतना प्रभावकारी नहीं समझा जाता था कि वह किसी खोज, विश्लेषण अथवा अनुभव पर आधारित है, जितना कि यह कहना कि वह किसी साधु-महात्मा द्वारा दी हुई या बतलायी हुई है। संभव है, यह उस समय की परिस्थितियों के अनुकूल रहा हो।

किन्तु युग-परिवर्तन के साथ, जब मनुष्य प्रत्येक वस्तु या घटना को कारण-परिणाम की तुला पर तौलने लगा, तो उसे बहुत-सी पुरानी बातें असंगत-सी लगीं और हमारी वनौषधियों के पूर्वाग्रह इतने स्वर्णिम होने पर भी व्यवहार में उनका प्रयोग घटता गया। आज उनकी महत्ता पर, उनकी उन्नति और प्रसार पर, भाषण अधिक है, श्रद्धा कम है। ऐसा क्यों ?

जब उन्नत देशों में वर्तमान औषध-प्रणालियों पर दिन-रात खोज-कार्य होता रहा, हमारी औषधविद्या अपने स्वर्णिम इतिहास, चमत्कार एवं अपनी सफलता की पूर्व-कहानियों पर ही संतुष्ट हो, हाथ पर हाथ धरकर बैठी रही। साथ ही, बाजारों में आनेवाली नयी-नयी विदेशी ढंग की औषधियों के स्वागत में हमने इतना उत्साह दिखाया कि हम आयुर्वेद की अनेक मानक, सिद्ध, उपयोगी औषधियों से भी विमुख हो गये, और हममें से अधिकांश ने कभी यह जानने का प्रयत्न ही नहीं किया, या कहें कि विचार तक नहीं किया कि क्या हमारी अपनी वनौषधियों में कुछ उपयोगी वस्तुएं हैं ?

लगभग 50 वर्ष पूर्व तक हमारे औषधीय पौधों के चमत्कार और उनके अद्वितीय गुणों के दावों की विधिवत् परीक्षा ही नहीं की गयी थी; इसी कारण उनके पक्ष अथवा विपक्ष, दोनों ही पर, विश्वस्त या वैज्ञानिक रूप से कुछ भी कहना संभव नहीं था। जो एक बार पुस्तक या पत्रिका में छपा, उसका दूसरे

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

लेखक ने भाषांतर, अनुवाद, रूपांतर अथवा शुद्ध अनुकृति कर दी; इस कारण अनेक अविश्वस्त नुस्खे औषधीय साहित्य में घुस गये, फैलते गये और वे अशुद्धियां आयुर्वेद साहित्य में शाश्वत सी हो गयीं। ऐसी ही कुछ समस्याओं की चर्चा ; मैंने प्रस्तावना में की है।

भारतीय वनौषधियों पर अनेक बड़े ग्रंथ और छोटी-छोटी पुस्तकें मौजूद हैं; इनमें से अधिकांश विशेषज्ञों, जैसे वनस्पतिशास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, रसायनशास्त्री तथा औषधनिर्माता आदि के लिए उपयोगी हैं। ये ग्रंथ लिखे ही उस आशय से गये हैं।

किन्तु जिस प्रकार के पाठकों के लिए नेशनल बुक ट्रस्ट, यह पुस्तकमाला —'भारत—देश और लोग'—प्रस्तुत कर रहा है, उस प्रकार के पाठकों के लिए कोई भी उपयुक्त पुस्तक इससे पूर्व उपलब्ध नहीं थी। इस प्रकार, निसंदेह ट्रस्ट बधाई का पात्र है कि उसने औषधीय पौधों को भी इस पुस्तक-माला के लिए उपयुक्त विषय समझा। नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तकें पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपने-अपने विषय पर वास्तव में वह अनूठी रचनाएं हैं, और उन विषयों पर पूर्व-मुद्रित विशाल साहित्य से वह कितनी भिन्न और रोचक हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में लगभग एक सौ औषधीय पौधों पर, यथासंभव केवल विश्वस्त सूत्रों पर ही आधारित, सामग्री दी गयी है।

पुस्तक में दिये हुए फोटो तथा रंगीन व रेखा-चित्र, जिन अनेक वैज्ञानिकों तथा संस्थाओं के सहयोग से प्राप्त हुए हैं, एवं जिनके नाम चित्र-सूची में अंकित हैं, मैं उन सबका आभारी हूं।

स्व० डॉ० संतापाऊ ने, न केवल इस पुस्तक के लिए पौधों एवं उनके चित्रों के चुनाव में तथा पुस्तक की रूपरेखा निर्धारित करने में सहायता दी थी, वरन् इसके अंग्रेजी संस्करण की पांडुलिपि का अधिकांश भाग स्वयं ध्यानपूर्वक पढ़ा और अनेक उपयोगी सुझाव दिये थे।

श्रीमती सत्या जैन, डा० वेद प्रकाश त्रिपाठी एवं श्रीमती शशि अग्रवाल ने हिन्दी भाषा सम्बन्धी अनेक उपयोगी सुझाव दिये हैं, मैं उनका आभारी हूं।

पौधों के कन्नड़, मलयालम तथा तमिल नामों के वर्णविन्यास में मेरे कई मित्रों ने सहायता दी है। डॉ० विश्वनाथ मुद्‌गल ने केऊ तथा मिश्मी तीता पर सामग्री एकत्रित करने में सहायता की है।

औषधीय पौधों पर साहित्य इतना विशाल और विस्तृत है कि किसी नयी खोज या अनुभव की रिपोर्ट मेरे ध्यान से छूट गयी हो, यह असंभव नहीं। यदि

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पाठक ऐसी कमियों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करेंगे तो मैं उनका साभार स्वागत करूंगा, और अगले संस्करण में उनके समाधान का प्रयत्न करूंगा।

कई वर्ष पूर्व पढ़े एक वाक्य से यह भूमिका समाप्त करूंगा—यदि लेखक उस समय की प्रतीक्षा में बैठा रहे जब उसकी रचना में किसी संशोधन या आलोचना की संभावना ही न रहे, तो कभी कुछ नहीं लिख सकेगा।

सुधांशु कुमार जैन

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
दो शब्द	v
प्रस्तावना	1
1. खोकली	7
2. अतीस	10
3. बच	12
4. अडूसा	14
5. वेल	17
6. कुलिंजन	19
7. छातिन	21
8. कालमेघ	24
9. ईशरमूल	26
10. किरमानी-अजवायन	28
11. अंगूरशफ़ा	30
12. नीम	32
13. ब्राह्मी	35
14. रसौत	37
15. पुनर्नवा	41
16. पलास	43
17. अमलतास	45
18. सदाबहार	48
19. ब्रह्ममंडूकी	50
20. सोमराजि	52
21. ईपेकाक	54
22. कुनैन	55
23. दारचीनी	57
24. हिरनतूतिया	60
25. मिश्मी तीता	62
26. झाड़ी-हल्दी	63

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

27.	केऊ	64
28.	रोशा-घास	66
29.	धतूरा	68
30.	तिलपुष्पी	70
31.	डिओस्कोरिआ	72
32.	इलायची	73
33.	बायबिड़ंग	76
34.	आंवला	78
35.	असमानियां	81
36.	लाल-दूधी	83
37.	हींग	89
38.	गंधपूर्ण	91
39.	नीलकंठ	93
40.	मुलेठी	95
41.	अनंतमूल	97
42.	इंद्रजौ	99
43.	चालमोगरा	101
44.	तालमखाना	103
45.	खुरासानी-अजवायन	105
46.	काला-दाना	107
47.	मेंहदी	113
48.	नरसल	115
49.	महुआ	117
50.	कामेला	120
51.	पोदीना	122
52.	जटामांसी	124
53.	तुलसी	126
54.	निसोथ	128
55.	हरमल	131
56.	उतरन	133
57.	कुटकी	135
58.	चीड़	137
59.	पीपलामूल	139

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

60. इसपगोल	141
61. पापरी	143
62. वाबची	145
63. वीजासाल	147
64. सर्पगंधा	149
65. रेवंदचीनी	152
66. अरंडी	154
67. चंदन	156
68. अशोक	158
69. कूथ	160
70. वला	162
71. कटेरी	164
72. कड़ाया	168
73. चिरायता	170
74. लोध	172
75. जामुन	174
76. इमली	177
77. बहेड़ा	180
78. गिलो	184
79. विषखोपड़ा	186
80. गोखरु	188
81. अंतमूल	190
82. जंगली-प्याज	191
83. बिल्लीलोटन	193
84. असगंध	195
संदर्भ सूची	197

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चित्र-सूची

मुखचित्र : तिलपुष्पी

रंगीन प्लेट

1. सदाबहार (कथाराथुंस राउज़)
2. रोशा (सीम्बोपोगोन मार्टिनी)
3. तिलपुष्पी (डीजीटालिस पुर्परेआ)
4. काला धतूरा (डातूरा मेटेल)
5. डिओस्कोरिआ
6. नीलकंठ (जेंटिआना कुरूं)
7. पापरी (पोडोफ़ील्लुम हेक्साड्रम)
8. सर्पगंधा (राउवोल्फ़िआ सर्पेन्टाइन)
9. कटेरी (सोलानुम स्रात्तेंसे)
10. बहेड़ा (टेर्मिनालिआ बेलेरिका)
11. जंगली प्याज (अर्जीनिआ इंडिका)

सादे प्लेट

1. बच (आकोरुस कालामुस)
2. अंगूरशफा (आट्रोपा बेल्लाडोना)
3. सनाय (कास्सिआ आंगुस्टीफोलिआ)
4. हिरनतूतिया (कॉल्चीकुम लूटेउम)
5. ईपेकाक (सेफाएलिस ईपेकाकुआन्हा)
6. सादा-धतूरा (डाटूरा ईन्नोक्सिआ)
7. इलायची (एलेट्टारिआ कार्डामोमुम)
8. असमानियां (एफेड्रा गेरार्डिआना)
9. वायबिड़ंग (एंबेलिआ त्स्जेरिआमकोट्टाम)
10. अनंतमूल (हेमीडेस्मुस इंडिकुस)
11. गरुड़फल (हीड्नोकार्पुस लाऊरीफोलिआ)
12. खुरासानी अजवायन (हिओस्सिआमुस नीगेर)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

13. नरसल (लोबेलिआ नीकोटिनेफोलिआ)
14. महुआ (माधूका इंडिका)
15. कपूर तुलसी (आँसीमुम किलिमंडशारीकुम)
16. उतरन (पेर्गुलारिआ डेमिआ)
17. जटामांसी (नार्डोस्टाकिस ग्रांडीफ्लोरा)
18. हरमल (पेगानुम हारमाला)
19. कुटकी (पीक्रोर्हीजा कुर्रोआ)
20. इसपगोल (प्लांटागो ओवाटा)
21. रेवंदचीनी (र्‌हेउम एमोडी)
22. कूथ (साउस्सूरेआ लाप्पा)
23. चंदन (सांटालुम आल्बुम)
24. सर्पगंधा राउवॉल्फिआ (राउवॉल्फिआ टेट्राफील्ला)
25. कड़ाया (स्टेर्कूलिआ ऊरेंस)
26. सोलानुम (सोलानुम विआरुम)
27. चिरायता (स्वेर्टिआ किराटा)
28. बिल्लीलोटन (वालेरिआना वालीचिई)
29. हर्रा (टेर्मिनालिआ चेबूला)

रेखाचित्र

1. खोकली (आकालिफा इंडिका)
2. अडूसा (आढाटोडा जेइलानिका)
3. छातिन (आल्स्टोनिआ स्कोलारिस)
4. नीम (आजाडिराक्टा इंडिका)
5. रसौत (बेर्बेरिस अरिस्टाटा)
6. रसौत (बेर्बेरिस लीसिउम)
7. अमलतास (कास्सिआ फीस्टुला)
8. दारचीनी (सीन्नामोमुम वेरूम)
9. छोटी इलायची (एलेट्टारिआ कार्डामोमुम)
10. आंवला (एंबलिका ओफ्फीसिनालिस)
11. लाल दूधी (एउफोर्बिआ हीर्टा)
12. त्रिधारी-सेंहुर (एउफोर्बिआ आटीक्वोरुम)
13. थूहर (एउफोर्बिआ नेरीफोलिआ)
14. कालादाना (ईपोमेआ नील)
15. पंचपत्री (ईपोमेआ पेसटिग्रिडिस)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

16. कलमीशाक (ईपोमेआ आक्वाटिका)
17. दोपत्तीलता (ईपोमेआ पेसकाप्रे)
18. महुआ (माधूका इंडिका)
19. निसोथ (मरेंमिआ टुर्पेथुम)
20. असीद (सोलानुम इंकानुम)
21. जामुन (सीजीजिउम कूमिनी)
22. इमली (टामारीडुंस इंडिका)
23. अर्जुन (टेर्मेनालिआ अर्जुना)
24. विषखोपड़ा (ट्रिआंथेमा पोर्टूलाकास्ट्रुम)
25. गोखरू (ट्रिबुलुस टेर्रेस्ट्रिस)
26. असगंध (वीदानिआ सोम्नीफेरा)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रस्तावना

औषधि तथा शल्य-चिकित्सा (सर्जरी) का इतिहास कदाचित् उतना ही पुराना है, जितना मानव का। किंतु प्रागैतिहासिक काल में घटनाओं को लिपिबद्ध करने का साधन न होने से आज हमें यह ज्ञात नहीं है कि रोग और उसके निवारण के विषय में आरंभ के मानव की क्या धारणाएं या साधन थे। जब से घटनाओं के प्रमाण मिलते हैं, यह ज्ञात होता है कि पुरातन काल में, अन्य विद्याओं की भांति, रोग के निदान एवं निवारण की विद्या का भी अनेक नक्षत्रों, ऋतुओं एवं दैवी शक्तियों से घनिष्ठ संबंध समझा जाता था, इसलिए चिकित्सा एवं परिचर्या के साथ-साथ देवी-देवता, धर्म तथा अंधविश्वास आदि अनेक रूढ़ियां चिकित्सा का एक आवश्यक अंग-सा वन गई थीं। फिर भी, किसी न किसी प्रकार की वास्तविक चिकित्सा एवं परिचर्या रोग-निवारण का साधन अवश्य रही होगी, यह निश्चित है।

ज़व कभी आज के वैज्ञानिक युग के मानव की चिर-अतृप्त जिज्ञासा ने भूत-काल की गहराइयों में दृष्टि डाली है, तभी उसे पुरातन काल की घटनाओं के लिखित, अर्द्धलिखित या अलिखित कुछ न कुछ प्रमाण मिल ही गये हैं। और यह सभी हमारे पूर्वजों की (उन परिस्थिति में) योग्यता, दूरदर्शिता एवं पुरुषार्थ भरे इतिहास के रोचक पृष्ठ हैं।

भारतवर्ष में रोग-निवारण के लिए पौधों के प्रयोग का कदाचित् सर्वप्रथम वर्णन ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद के सूत्रों में वर्णित अनेक औषधियों के नाम तो इतने शुद्ध और स्पष्ट है कि आज भी उन नामों से पौधों को भली-भांति पहचान सकते हैं, जैसे सेमल, पीपल, पलाश तथा पिठवन। किंतु ऋग्वेद में प्रायः औषधियों के विषय में अधिक विवरण नहीं है। अथर्ववेद में अधिक विस्तारपूर्वक वर्णन है। ऋग्वेद का रचना-काल लगभग 3,500-1,800 वर्ष ईसा पूर्व बताते हैं। वेदों की रचना के वाद लगभग 1,000 वर्ष तक इस विद्या की उन्नति का कोई प्रमाण नहीं है। उसके पश्चात् चरक तथा सुश्रुत के भारतीय वनौषधि पर दो अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता—सामने आये। चरक-संहिता में लगभग 700 औषधियों का वर्णन है, इनमें से कुछ पौधे भारतीय नहीं थे। सुश्रुत-संहिता में शल्य-चिकित्सा (सर्जरी) का वर्णन है। सुश्रुत को विदेशी वैज्ञानिकों ने भी बहुत मान्यता दी है। वे स्वीकार करते हैं कि भारत में शायद 'प्लास्टिक-सर्जरी' की प्रथा 2,000 वर्ष पहले से ही थी।

चरक के समय से आज तक अनेक आयुर्वेदाचार्यों, साधु-महात्माओं तथा

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अनुसंधानकर्त्ताओं के सहयोग से भारतीय वनौषधियों की संख्या बढ़ती गयी और अब लगभग 1,500 पौधों में औषधीय गुण बताये जाते हैं।

भारतीय वनौषधियों पर अनेक छोटी-बड़ी पुस्तकें लिखी गई हैं। कई तो विशाल ग्रंथ हैं, जिनमें सहस्रों पृष्ठ और अनेक भाग हैं। क्योंकि कभी-कभी एक पौधे के विषय में भारत के भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न धारणायें और मान्यतायें हैं। संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भारतीय भापाओं में भी आयुर्वेद पर पर्याप्त साहित्य लिखा गया है। सर्वश्री दत्त, जार्ज वाट, कर्नल रामनाथ चोपड़ा (तथा उनके साथी एवं शिष्यगण), के. नादकर्णी, के. कीर्त्तिकर, बी. डी. वसु, बी. मुखर्जी, चंद्रराज भंडारी, के. पी. बिश्वास, कृष्णप्रसाद त्रिवेदी, देवीशरण गर्ग, 'भारत की संपदा' (वेल्थ ऑफ़ इंडिया) के संपादकगण आदि अनेक विद्वानों ने इस विषय के संकलन में प्रशंसनीय कार्य किया है। किंतु कुछ लेखकों ने पौधों के नाम (या सही पहचान) आदि का ठीक घ्यान न रखते हुए सामग्री संकलित कर दी है। फल यह हुआ कि कुछ पौधों पर तो इतने अतिरिक्त औषधीय गुण थोपे गए हैं मानो वे सर्व-रोग-निवारक ही हों।

प्राचीन साहित्य में जिन चमत्कारी औपधियों का उल्लेख है, उनके नमूने तो उपलब्ध हैं नहीं; न ही उस समय के वैद्यों के लिए यह संभव था कि वे भावी पीढ़ियों के लिए ऐसा कोई प्रामाणिक संग्रह बना सकें। कुछ पौधों का तो पूरा या ठीक वर्णन भी नहीं मिलता है। इसलिए, पौधों के केवल तत्कालीन उल्लिखित नाम से आज उनकी पहचान करना या यह जानना कि हमारे पूर्वजों का किस पौधे से आशय था, असंभव-सा है। पौधों के स्थानीय नाम तो समय के साथ, व्यक्ति-व्यक्ति के बीच, बदलते जाते हैं। वनस्पतिशास्त्र में ऐसे अनेक दृष्टांत हैं, जहां एक ही नाम दो या अधिक पौधों को दिया गया है। उदाहरण के लिए हम पुनर्नवा, रूदंती, ब्रह्मी, दूधी, सोमलता के दृष्टांत ले सकते हैं; इनसे बड़ी उलझन हुई है। भारत में कुछ कार्यकर्त्ता अब इन गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न तो कर रहे हैं, किंतु इसमें अनेक विषयों के विशेषज्ञों का निःस्वार्थ सहयोग वांछनीय है, जो प्रायः दुर्लभ रहता है। फिर भी इस दिशा में जो भी कार्य किया जायेगा, वह वनस्पतिशास्त्र, आयुर्वेद, औषधनिर्माण आदि कई क्षेत्रों में उपयोगी होगा।

प्राचीन काल में वनौषधियों के विपय में प्राप्त ज्ञान की जानकारी कुछ लिखित प्रमाणों के अतिरिक्त एक अन्य साधन द्वारा भी संभव है। वह है, हमारे देश के सुदूर वनों में रहने वाली आदिम-जातियां, जिनकी संस्कृति अब भी बहुत कुछ पुराने ढंग की है। आदिवासियों के बीच कार्य करने पर ज्ञात होता है कि प्राचीन वनौषधियों का कुछ ज्ञान मौखिक परंपरा द्वारा, पीढ़ी-दर-पीढ़ी, आज तक भी जीवित रह गया है। कुछ कार्यकर्त्ताओं ने इस सामग्री को एकत्रित करने का प्रयास

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

किया है, किंतु यह कार्य जितने बड़े पैमाने पर तथा जिस तत्परता से (किया जाना चाहिए था, उसका अल्पांश भी नहीं हुआ है। इस प्रकार के खोज कार्य को एथनोबॉटनी (अर्थात् आदिवासियों का वनस्पति से संबंध) कहते हैं। 1960 से मैंने मध्य प्रदेश के आदिवासियों के बीच ऐसा कुछ कार्य आरंभ किया, बंगाल असम व उड़ीसा के कुछ आदिवासियों के बीच भी कार्य किया। पौधों के अनेक ऐसे औषधीय गुण इन आदिवासियों से ज्ञात हुए जिनका किसी साहित्य में वर्णन नहीं मिलता, इनमें से कुछ का उल्लेख प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है; किंतु इनकी वैज्ञानिक परीक्षा विधिवत् होनी आवश्यक है।

यह प्रश्न प्रायः ही उठाया गया है कि वनौषधियों की वैज्ञानिक परीक्षा की जानी चाहिए। यह ठीक ही है। कई बार आयुर्वेद कीं अत्यंत प्रचलित औषधियां प्रयोगशालाओं के परीक्षणों में निरर्थक सिद्ध हुईं। इससे यह संकेत अवश्य मिलता है कि हमें सभी वनौषधियों की परीक्षा यथासंभव कर लेनी चाहिए। किंतु इसका एक दूसरा पहलू भी है। संभव है कि औषधि में कोई ऐसे अज्ञात तत्व निहित हों, जो रोगी को लाभ पहुंचाते हैं, किंतु रासायनिक विश्लेषण में दिखाई नहीं देते। यह भी संभव है कि पौधे में वर्तमान भिन्न एल्केलाइड या अन्य तत्व जब एक साथ मिलकर क्रिया करते हैं—जैसे समूचे पौधे के क्वाथ में—तभी वह उपयोगी होता है। उनके एल्केलाइड आदि अलग-अलग 'व्यर्थ' सिद्ध होते हैं। साथ ही, पौधे फूलने का समय, फलने का समय, बीज या छाल एकत्रित करने का समय, उगने की ऋतु तथा स्थान, आदि-आदि अनेक बातें औषधि की उपयोगिता पर प्रभाव डालती हैं; और यह असंभव नहीं कि रासायनिक विश्लेषण करने वालों ने इन सब का ध्यान न रखा हो।

ऐसा अनुमान है कि भारत में लगभग 2,000 पदार्थ औषधियों में प्रयुक्त होते हैं, इनमें लगभग 200 पदार्थ जीव-जंतुओं से प्राप्त होते हैं; इतने ही खनिज पदार्थ हैं। लगभग 1,500 पदार्थ—फल, फूल, पत्ते, जड़, छाल, गोंद, रस आदि—वनस्पति जगत की देन है। हमारे विशाल देश के लिए यह संख्या कुछ अधिक नहीं है। भारत में नाना प्रकार की जलवायु मिलती है। 49^0 से. से—43^0 से. तक का तापमान, 100 मिमी से लेकर 10,000 मिमी से भी अधिक वर्षा के क्षेत्र, समुद्रतटों से लेकर लगभग 6,000 मी ऊंचाई तक के स्थान, आदि कारणों से भारत में लगभग 15,000 से अधिक जातियों के पौधे (एंजिओस्पर्म) मिलते हैं, जिनमें औषधीय गुण बताये जाते हैं।

इन 1,500 पौधों में से केवल एक सौ का चुनाव कदाचित् मेरी सबसे बड़ी कठिनाई थी। प्रायः केवल वही पौधे चुने हैं, जिनकी उपयोगिता वैज्ञानिक विधियों से परखी और सिद्ध हो चुकी है, अथवा जो पौधे भारतीय मानक औषध-कोश

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

(इंडियन फार्मेस्यूटिकल कोडेक्स), ब्रिटेन का मानक औषध-कोश (ब्रिटिश फार्मेस्यूटिकल कोडेक्स) तथा अमेरिका का मानक औषध-कोश (यूनाइटेड स्टेट्स डिस्पेंसेटरी) में मान्य समझे गये हैं; पुस्तक में उन्हीं का विवरण दिया गया है। अधिकतर भारत के देशज पौधे ही लिये गये हैं। कुछ ऐसे विदेशी पौधे भी, जिनकी अब भारत में खेती हो रही है, या जिनका व्यापार-कार्य में महत्व है, चुन लिये गये हैं। इनमें से कुछ पौधे तो अब भारत में फैल भी गये हैं और स्वाभाविक रूप से उगते दिखाई देते हैं।

पुस्तक के अध्याय, पौधों के वैज्ञानिक नाम के वर्णक्रमानुसार हैं। प्रत्येक अध्याय के शीर्षक के लिए पौधे का मान्य तिजारती नाम (ट्रेड नेम) या कोई अधिक प्रचलित हिंदी नाम चुन लिया है; यदि एक से अधिक नाम भारतीय औषध-कोश में मान्य समझे गये हैं, अथवा व्यापार-कार्य में प्रचलित हैं, तो उन्हें दूसरी पंक्ति में कोष्ठक में दे दिया है।

जहां तक संभव हुआ है, पौधों के सही स्वीकृत वैज्ञानिक नाम ही प्रयोग किये गये हैं। पाठकों की सुविधा के लिए कुछ पौधों के स्वीकृत नाम के तुरंत बाद ही, अधिक प्रचलित होने के कारण, कुछ पुराने अस्वीकृत नाम भी दे दिये हैं। पौधों का कुल (फैमिली) कोष्ठक में दिया है। उसके नीचे भारतीय भाषाओं में नाम दिये हैं, यदि अंग्रेजी नाम मिल सका है, तो वह भी दे दिया है। भारतीय भाषाओं में सर्वप्रथम हिंदी व संस्कृत के नाम हैं; उसके बाद वर्णक्रमानुसार अन्य भाषाएं हैं। भारतीय भाषाओं में पौधों के अनेकानेक नाम मिलते हैं, उन सबका यहां लिखना न संभव था और न आवश्यक; इसलिए केवल एक-दो अधिक प्रचलित नाम ही लिखे हैं। जिन भाषाओं की लिपि मैं नहीं जानता, उनके शब्दों के उच्चारण अपने कुछ मित्रों की सहायता से सुने, और देवनागरी में लिखे। फिर भी उच्चारण में अंतर होने से, तथा बार-बार लिप्यंतरण होने से इन नामों में अशुद्धियां हो जाना असंभव नहीं है। कुछ पौधों के वैज्ञानिक अथवा अन्य नाम किस प्रकार बने हैं, इसका भी संक्षिप्त वर्णन है।

पौधे का वर्णन संक्षिप्त रूप में ही दिया है। प्रायः वही लक्षण लिखे हैं जिन्हें पढ़कर पाठक पौधे के आकार का अनुमान कर सकें, तथा उन्हें पौधा पहचानने में सुविधा हो सके। यद्यपि केंद्रीय शिक्षा मन्त्रालय द्वारा मान्य तकनीकी शब्द ही प्रयोग किये गये हैं, किंतु पाठक को कठिन शब्दों के जाल से बचाने का यथासंभव प्रयास किया गया है। पौधे का वर्णन केवल पहले की प्रकाशित पुस्तकों पर आधारित नहीं है, बल्कि पौधे के अनेक नमूने स्वयं देखकर अथवा अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर लिखा गया है। पौधों को पहचानने में सुविधा हो, इस दृष्टि से पुस्तक में वर्णित बहुत-से पौधों के चित्र भी दिये हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पौधों का प्राप्ति-स्थान भी कलकत्ते के विशाल वनस्पति संग्रहालय में रखे सहस्रों नमूनों तथा विश्वस्त साहित्य की सहायता से लिखा है।

विशेषकर पौधों के औषधीय गुणों पर जो भी सूचना दी गयी है, अत्यंत विश्वसनीय साहित्य पर आधारित है और केवल वे ही गुण लिखे गये हैं, जिन्हें ब्रिटेन तथा अमेरिका के मानक औषध-कोशों ने स्वीकार किया है, अथवा जिन गुणों की पुष्टि वैज्ञानिक विधि से या अस्पतालों में की जा चुकी है। इस संबंध में मैंने पिछले 25-30 वर्षों में छपे साहित्य की छानबीन की है। इस खोज के समय मुझे एक बात यह स्पष्ट हुई कि हमारे औषधीय पौधों में से बहुत थोड़ों की ही वैज्ञानिक परख की गयी है। इस कार्य में समय तो बहुत लगता है किंतु यदि हम अपनी वनौषधियों से—इस उपयोगी संपत्ति से—लाभ उठाना चाहते हैं, तो इस कार्य को शीघ्र करना ही होगा।

कहीं-कहीं पर औषधीय पौधों के किसी विशेष अन्य उपयोग का वर्णन भी किया गया है। एक वंश की मुख्य औषधीय जाति का विवरण देने के उपरांत अन्य जातियों का भी संक्षिप्त वर्णन दिया गया है। भारत में विभिन्न औषधियों की वार्षिक खपत या मांग कितनी है, इसकी सही-सही जानकारी हमें नहीं है। ये आंकड़े भिन्न स्रोतों से एकत्रित की हुई सूचना पर आधारित हैं।

विशेष

यह बता देना आवश्यक है कि इस पुस्तक का उद्देश्य पाठकों का भारत में होने वाले कुछ मुख्य औषधीय पौधों से परिचय कराना मात्र है। इसमें चिकित्सा के आशय से नुस्खे नहीं दिये हैं। अनेक औषधियां कई पौधों के उपयोगी तत्त्व मिलाकर बनती हैं; उन तत्वों को प्राप्त करने की विधि, उनकी मात्रा, तथा औषधि बनाने आदि की क्रिया, सभी अनुभवी वैद्यों या औषध-निर्माताओं का कार्य है। रोग का सही निदान, तथा औषधि के सेवन का समय, मात्रा, उससे संलग्न अन्य उपचार एवं परिचर्या सभी महत्वपूर्ण बातें हैं जिन्हें योग्य वैद्य ही समझते व जानते हैं। अनभिज्ञ व्यक्तियों के लिए, अपनी समझ से किसी औषधि का प्रयोग करना अत्यंत हानिकारक हो सकता है।

भारत में एलोपेथी तथा होम्योपेथी के प्रचलन के कारण आयुर्वेद में अधिकांश लोगों की श्रद्धा निश्चय ही घटती जा रही है, किंतु वनौषधियों द्वारा रोग-निवारण के पक्ष में बहुत कुछ कहा व लिखा जा सकता है। यह सत्य है कि आयुर्वेद-साहित्य में किसी इक्के-दुक्के रोगी पर आजमाये हुए या तीर-तुक्के के ढंग पर सफल अनेक नुस्खे शामिल हो गये हैं। किंतु, यह भी सत्य है—और कहीं अधिक मात्रा में—कि हमारी वनौषधियों में सैकड़ों पौधे ऐसे हैं, जिनका वैज्ञानिक विश्लेषण भारत या विदेशों में हो चुका है; जो पहले जंतुओं पर और तदुपरांत

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

औषधालयों में रोगियों पर आजमाये जा चुके हैं, और जिन्हें न केवल भारत, वरन् विदेशी मानक औषध-कोशों में मान्यता मिल चुकी है।

कौन-सी चिकित्सा प्रणाली अच्छी है, यह न इस पुस्तक के विषय का क्षेत्र है, न इसकी चर्चा यहां संभव है। केवल इतना लिखना पर्याप्त है कि जिस देश की 80 प्रतिशत जनता छोटे गांवों में रहती हो, तथा जिसके इर्द-गिर्द वनौषधियां यथेष्ट मात्रा में फैली पड़ी हों, और जहां के अधिकांश लोगों की दैनिक आय एक रुपये से भी कम हो, वहां रोग पहचानने की लंबी दूभर विधियां, दुर्लभ यंत्र और महंगी दवाईयां सर्वसाधारण के उपयोग का साधन नहीं बन सकतीं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

1. खोकली

(आकालिफ़ा)

वैज्ञानिक नाम : आकालिफ़ा इंडिका (*Acalypha indica* L.) चित्र 1

(कुल—एउफ़ोर्बिएसिए)

अन्य नाम : हिंदी—कुप्पी;
संस्कृत—हरित्तमंजरी;
उड़िया—इंद्रमरिस;
कन्नड़—कुप्पीगिडा;
गुजराती—वेंछिकांटो, चररजो-झाड़, रुंछाड़ो-दादरो;
तमिल—कुप्पेमणि;
तेलुगू—कुप्पेमणि;
बंगला—मुक्तझूरि, मुक्तबर्सी;
मराठी—खोकली;
मलयालम—कुप्पामणि।

व्यापार-कार्य का नाम आकालिफ़ा वैज्ञानिक नाम पर आधारित है।

वर्णन

यह लगभग 75 सेमी ऊंचा पौधा होता है। इसके पत्ते 3-8 सेमी लंबे, अंडाकार अथवा चतुर्कोण-अंडाकार से होते हैं। पत्तों में प्रायः तीन शिराएं होती हैं, और उनके किनारे दंतुर होते हैं, पत्तों के डंठल पत्तों से भी लंबे होते हैं। फूल छोटे-छोटे होते हैं तथा पत्तों के कक्ष में, स्पाइक जैसे, सीधे गुच्छों में लगते हैं। मादा पुष्प के नीचे एकतिकोना-सा सहपत्र होता है। नरपुष्प अत्यंत छोटे होते हैं, तथा स्पाइक के ऊपरी भाग में लगते हैं। फल रोयेंदार होते हैं तथा सहपत्रों में ढके रहते हैं।

प्राप्ति-स्थान

खोकली का पौधा भारत के सभी मैदानी भागों में पाया जाता है। यह प्रायः उद्यानों व खेतों में तथा सड़कों व मकानों के आसपास उग आता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

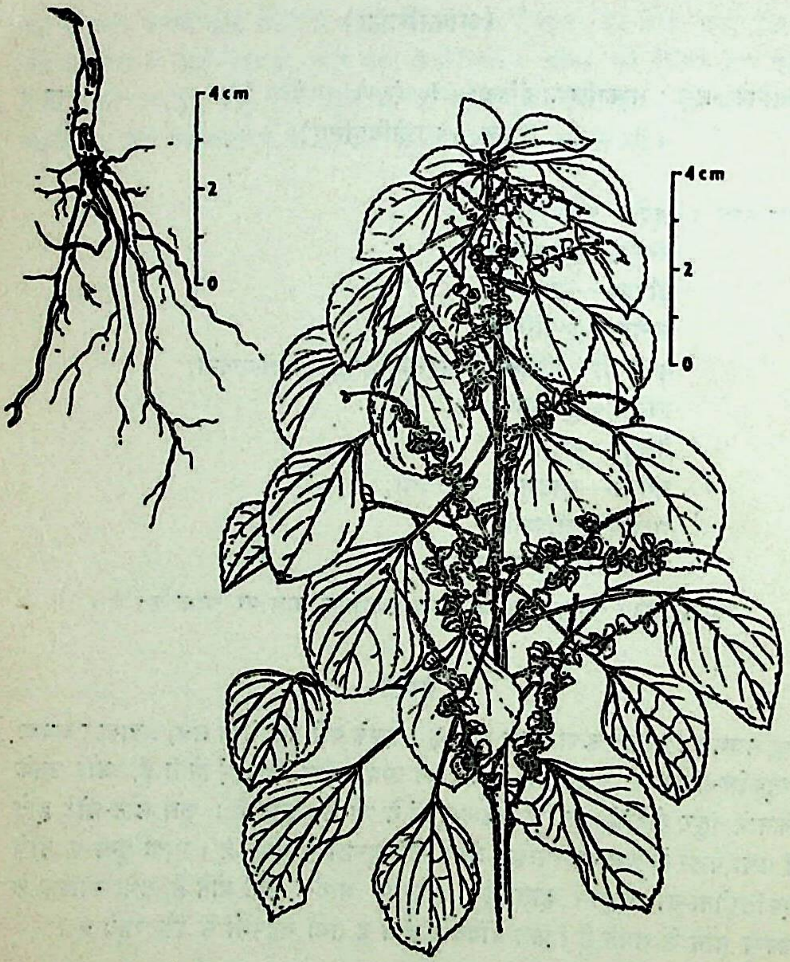

चित्र 1—खोकली (आकालिफ़ा इंडिका)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

खोकली के पौधों पर जिस समय फूल आते हैं, उस समय उन्हें समूचा उखाड़ कर, सुखा लेते हैं तथा औषधि में प्रयोग करते हैं।

इस पौधे में 'ईपेकाक' जैसे गुण बताते हैं। यह (ब्रोंकाइटिस) श्वास-नली की सूजन, श्वासरोग या दमा, निमोनिया तथा गठिया में उपयोगी है। इसकी जड़ व पत्ते रेचक होते हैं। पत्तों का रस वमनकारी होता है, अर्थात् उसके सेवन से कै हो जाती है। ताज़े पत्तों को पीस कर फोड़ों पर भी लगाते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

2. अतीस

(अकोनाइट)

आकोनीटुम जाति
(कुल—रैननकुलेसिए)

अकोनाइट एक प्रसिद्ध वनौषधि है, इसके प्रकंद विषैले होते हैं, किन्तु नियमित मात्रा में सेवन करने से इनमें औषधीय गुण होते हैं। ब्रिटेन में आकोनीटुम नापेल्लुस (*Aconitum napellus* L.) मान्य औषधि है। यह जाति तो भारत में नहीं होती, किन्तु इस वंश की अन्य जातियां पायी जाती हैं जो लगभग उतनी ही उपयोगी हैं। इनमें से दो का वर्णन नीचे किया गया है।

अतीस (वैज्ञानिक नाम : आकोनीटुम हेटेरोफील्लुम *Aconitum heterophyllum* Wall. कश्मीरी—अतिविष, पोदिस)

यह एक छोटा-सा पौधा है, जो उत्तरपश्चिमी हिमालय में 2,000 से 4,000 मी ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। अतीस के प्रकंद ज्वर एवं ज्वर के बाद की दुर्बलता दूर करने के लिए उपयोगी बताये जाते हैं। अतीस में बलवर्धक गुण तो अवश्य हैं, किन्तु ज्वरनाशक के रूप में इसकी मान्यता अधिक नहीं है। यह अतिसार व पेचिश में भी उपयोगी है।

बनबलनाग (वैज्ञानिक नाम : आकोनीटुम कासमांथुम *Aconitum chasmanthum* Stapf)

यह पौधा भी उसी क्षेत्र में पाया जाता है जहां अतीस होता है। यद्यपि इस पौधे के प्रकंदों में ब्रिटेन वाले 'अकोनाइट' से उपयोगी तत्त्वों की मात्रा लगभग दस गुना अधिक होती है, फिर भी उनकी क्षमता उतनी नहीं होती। ब्रिटेन वाली जाति के स्थान पर बनबलनाग प्रयोग करने के लिए उपयुक्त बताया जाता है।

अन्य जातियां

इनके अतिरिक्त, दूधिया-विष (वैज्ञानिक नाम : आकोनीटुम डीनोर्रहीज़ुम *Aconitum deinorrhizum* Holmes ex Stapf; कश्मीरी—सफेद-विषमोहरा) तथा कुछ अन्य जातियां भारत में मिलती हैं। उनकी उपयोगिता के विषय में अधिक ज्ञान नहीं है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

बाजार में 'अकोनाइट' नाम से जो औषधियां बिकती हैं, वे प्रायः उनमें कई जातियों के प्रकंद मिले रहते हैं।

'अकोनाइट' में जो एल्केलाइड होते हैं, वे प्रायः अत्यन्त विषैले होते हैं, और औषधि में उनका सेवन अत्यन्त निर्धारित मात्रा में तथा सावधानी से किया जाता है; अन्यथा नाना प्रकार के हानिकारक प्रभाव उत्पन्न होने का भय रहता है। इसलिए आजकल इस औषधि का प्रयोग केवल तंत्रिकाशूल (न्यूरेलजिया) या सम्बन्धित रोगों में बाहरी लेप आदि में ही करते हैं। इसका सेवन नहीं किया जाता।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

3. बच

(कालामुस)

वैज्ञानिक नाम : आकोरूस कालामुस (*Acorus calamus* L.) प्लेट 1

(कुल—अरेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—घोड़ा-बच, सफेद-बच;
संस्कृत—भूतनाशिनी;
असमिया—थेमेप्रि;
कन्नड़—बजेगिडा;
गुजराती—गंधिलोवज;
तामिल—वाशंभू;
तेलुगू—वसा;
बंगला—बच;
मराठी—वेखंड;
मलयालम—वायंपू;
अंग्रेजी—'स्वीट-फ्लैग'।

वर्णन

यह एक छोटा पौधा होता है; इसके प्रकंद विभाजित होकर भूमि में दूर-दूर तक फैल जाते हैं। प्रकंद अत्यन्त सुगंधित होते हैं। इसके पत्ते बहुत लम्बे (1-1.5 मी तक), तथा केवल 2-3 सेमी चौड़े होते हैं। फूल छोटे, केलई से रंग के होते हैं, तथा 5-10 सेमी लम्बी स्पाइकों में आते हैं। यह स्पाइका विशेष प्रकार की होती हैं और 'स्पेडिक्स' कहलाती हैं। फूल वाले स्तंभ के नीचे एक पत्ते के आकार का, वड़ा, 15-75 सेमी लम्बा 'स्पेथ' भी होता है। फल पीले रंग के होते हैं।

प्राप्ति स्थान

बच के पौधे लगभग 2,000 मी ऊंचाई तक के क्षेत्र में, समस्त भारत में पाये जाते हैं। यह प्रायः हिमालय पर्वत के उत्तरी व पूर्वी भागों में, दलदल में अथवा अन्य नम स्थानों पर, अधिक होता है। मैसूर तथा कुछ और स्थानों में इसकी खेती भी की गयी है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

बच के प्रकंद सुखा कर औषधि में प्रयोग किये जाते हैं।

इसमें एक वाष्पशील (वोलेटाइल) तेल होता है जिसके कारण इसमें वायु या वात दूर करने का गुण होता है। यह पेट फूलने या अफारा अथवा उदरस्फीति की अवस्था में शांति पहुंचाती है और भूख बढ़ाती है। अधिक भोजन करने से या पेट में वायु हो जाने के कारण जो पीड़ा होती है, उसके शमन के लिए यह उपयोगी है। क्योंकि बच में सुगंधित तेल होते हैं यह कफनिस्सारक भी है, अर्थात् बलगम दूर करती है, तथा दमा रोग में शांति पहुंचाती है। बच में टैनीन भी होते हैं, इसलिए यह अतिसार एवं पेचिश, अर्थात् आंव आने पर उपयोगी है। बच वमनकारी भी है और अधिक मात्रा में लेने से अत्यधिक वमन होने का भय रहता है।

बच के पत्ते तथा प्रकंद पेय पदार्थों को सुगंधित करने के लिए, तथा कीटनाशक औषधियां बनाने के भी काम आते हैं। इसकी जड़ों को पीसकर कृमिनाशक औषधि भी बनायी जाती है।

बच का तेल तंतुओं के लिए बलकारक होता है। एल्कोहोल में बनाये हुए बच के (सुगंधित-वाष्पशील-तत्वरहित) रस में पीड़ाहर तथा शमक गुण होते हैं, इस कारण बच मानसिक रोगों में प्रयोग होता है।

हाल ही में हुए कुछ परीक्षणों में यह दिखाया गया है कि बच के प्रकंदों में कीटाणु की बढ़ोतरी रोकने वाले (एंटीबैक्टीरियल) तत्व होते हैं।

1975-76 में लगभग 13 लाख रुपये के प्रकंद निर्यात किये गये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

4. अडूसा

(वसाका)

वैज्ञानिक नाम : आढाटोडा जेइलानिका (*Adhatoda zeylanica* Medik.)

चित्र 2

(कुल—अकँथेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—वांसा, वासिका;

संस्कृत—वासक;

असमिया—वहाका, हेरबुक्षा, तीशाए;

कन्नड़—आडुसोगे-गिडा;

गुजराती—अर्दूसी, अल्दूसो, धावी-अरडूसी;

तामिल—अड़ादोरई, अड़ाथोरई;

तेलुगू—अड़ासरमु;

बंगला—वासक;

मराठी—अदूल्सा;

मलयालम—आडलोटकम ।

(दिल्ली—पियाबांसा ।)

इस पौधे का वैज्ञानिक नाम, भारतीय नाम 'वासक' पर आधारित है ।

वर्णन

यह 1-2 मी ऊंचा सदाहरित पौधा होता है । इसकी शाखाएं हल्के पीले से रंग की अत्यन्त विभाजित व घनी होती हैं । इसके पत्ते बड़े और लम्बोतरे होते हैं । फूल सफेद होते हैं; उनकी पंखुड़ियों (दल) पर गुलाबी या बैंजनी रंग की लाइनें सी होती हैं । फूल घनकी, छोटी स्पाइकों में लगते हैं । स्पाइकों के डंठल पत्तों से छोटे होते हैं । स्पाइकों पर पत्तों के आकार के छोटे-छोटे सहपत्र भी होते हैं, जिन पर घनकी मोटी शिराएं (नसें) होती हैं । इन सहपत्रों के कारण अडूसा के पौधों को प्रायः दूर से ही पहचाना जा सकता है । अडूसा के फल एक छोटी सी संपुटिका होती है, जिनमें कई छोटे बीज होते हैं ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

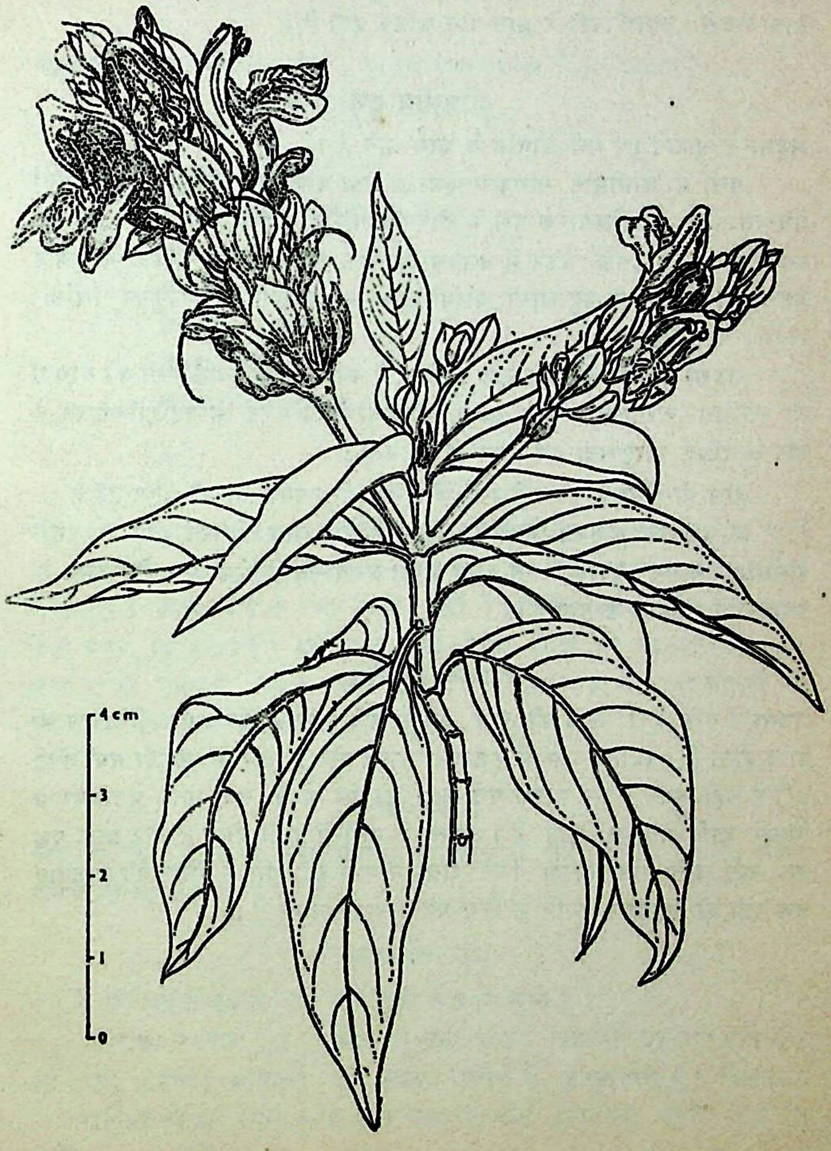

चित्र 2—अडूसा (आढाटोडा जेइलानिका)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्राप्ति-स्थान

अड़ूसा के पौधे भारत के सभी मैदानों तथा तलहटी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। यह प्रायः नगरों (आबादियों) के आस-पास अधिक होते हैं।

औषधीय गुण

अड़ूसा के सुखाये हुए पत्ते औषधि में काम आते हैं।

पत्तों में 'वासीसीन' नामक एल्केलाइड तथा वाष्पशील तेल होता है। अड़ूसा प्रधानतः अपने कफनिस्सारक गुण के कारण प्रसिद्ध है। इसका शरबत, रस या अर्क प्रयोग होता है। इसके सेवन से बलगम या कफ पतला होकर सुविधा से निकल जाता है। इस कारण यह खांसी, बलगम, दमा या श्वास नली की सूजन (ब्रोंकाइटिस) में लाभप्रद है।

अड़ूसा में कफनिस्सारक गुण इसलिए हैं क्योंकि यह श्वास नली की ग्रंथियों को उत्तेजित करती है; किन्तु अधिक मात्रा में सेवन करने से यह हानिकारक है और अत्यधिक व्याकुलता एवं वमन हो सकते हैं।

हाल ही में किये गये परीक्षणों में वासक की उपयोगिता की पुष्टि हुई है। जम्मू स्थिय रीजनल रिसर्च लैबोरेटरी में यह खोज की गई है कि इससे वासीसीन नामक पदार्थ प्राप्त होता है जो प्रसव संबंधी रोगों में प्रयोग होता है, तथा उसमें गर्भपात के गुण हैं।

अन्य उपयोग

अड़ूसा के पत्ते हरी खाद की तरह प्रयोग किये जाते हैं; इनसे एक पीला रंग भी प्राप्त होता है। क्योंकि पत्तों में कुछ एल्केलाइड होते हैं; इन पर फफूंदी तथा कीड़े अधिक नहीं लगते। इस कारण पत्ते फलों को पैक करने तथा उनके भंडारघर में बिछाने आदि के काम आते हैं। अड़ूसा के पत्तों में दुर्गंध होती है और प्रायः पशु उन्हें नहीं खाते। इस कारण जिन क्षेत्रों में कटी हुई भूमि के सुधार की योजनाएं चल रही हों, वहां पर लगाने के लिए यह पौधा उपयोगी है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

5. बेल

वैज्ञानिक नाम : एग्ले मार्मेलॉस [*Aegle marmelos* (L.) Correa]

(कुल—रूटांसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—विल्व, श्रीफल;
असमिया, बंगला, मराठी—बेल;
कन्नड़—बिल्वपत्रे;
गुजराती—बीली;
तामिल—विल्वम;
तेलुगू—मारेड़ू;
मलयालम—विल्वम, कुवलम ।

वर्णन

यह एक मझोला पतझड़ी वृक्ष होता है। इसके-पत्तों में 3 या 5 पत्रक होते हैं, पत्तों के कक्ष में बड़े कांटे होते हैं । बेल के फूल केलई या सफेद रंग के मधुर-सुगंधित लगभग 2.5 सेमी व्यास के तथा छोटे गुच्छों में होते हैं । इसका फल गोल 8-20 सेमी व्यास का होता है । यह पहले हल्के-हरे या केलई रंग का होता है, फिर भूरा सा हो जाता है । फल का छिलका कठोर होता है । इसका गूदा नारंगी रंग का अत्यन्त स्वादिष्ट एवं सुगंधित होता है ।

प्राप्ति-स्थान

बेल के वृक्ष भारत के सभी मैदानी तथा तलहटी क्षेत्रों में पाये जाते हैं, इनका रोपण भी किया जाता है ।

औषधीय गुण

बेल के पके अथवा अधपके फल औषधियों में काम आते हैं ।

फल का लेसदार गूदा (म्यूसीलेज) तथा उसके 'पेक्टीन' उपयोगी होते हैं । यह पुराने (जीर्ण) अतिसार, आंव अथवा पेचिश में लाभदायक है । विशेषकर जिन रोगियों को कभी दस्त और कभी कब्ज का रोग होता हो, उनके लिए यह विशेषतः उपयोगी है ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पेचिश से मुक्त होने के पश्चात् रोगियों की अंतड़ियों को स्वस्थ करने के लिए बेल के गूदे का शरबत अच्छा होता है।

बेल के कच्चे या अधपके फल खाने से भूख एवं पाचन-शक्ति बढ़ती है।

हाल ही के कुछ परीक्षणों में यह दिखाया गया है कि बेल के पत्तों, फलों तथा जड़ में एंटीबायोटिक तत्व होते हैं।

(बस्तर के आदिवासी ज्वर के रोगियों को बेल की जड़ की छाल का क्वाथ देते हैं।)

अन्य उपयोग

बेल की लकड़ी कोयला तथा 'प्रोड्यूसर गैस' बनाने के लिए उपयुक्त है।

बेल का गूदा गोंद की तरह प्रयोग किया जाता है, और वार्निश तथा लकड़ी जोड़ने के मसाले बनाने के काम आता है। कच्चे फलों के छिलकों से एक पीला रंग निकलता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

6. कुलिंजन

(ग्रेटर-गलंगल)

वैज्ञानिक नाम : आल्पीनिआ गालांगा [*Alpinia galanga* (L.) Willd.]

(कुल—जींजीबेरेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—सुगंध-वच;
संस्कृत—कुलंजन;
कन्नड़—दुमपरास्मे;
तामिल—पेरारट्टई;
बंगला—कुलंजन;
मराठी—कोष्ठ-कुलिंजन ।

व्यापार-कार्य में इस औषधि को 'गलंगल' कहते हैं । यह नाम वैज्ञानिक नाम पर आधारित है । इसे बड़ा गलंगल कहते हैं क्योंकि इस ही वंश की एक दूसरी जाति को छोटा-गलंगल कहते हैं ।

वर्णन

यह पौधा लगभग 2 मी तक ऊंचा हो जाता है । इसके पत्ते 70 सेमी तक लंबे तथा 15 सेमी चौड़े, ऊपर हरे व नीचे केलई से होते हैं । पत्तों के किनारे सफेद से होते हैं । मध्यशिरा (बीच की नस) बहुत मोटी होती हैं । फूल लगभग 3 सेमी लंबे केलई या सफेद रंग के लाल चित्तीदार होते हैं, तथा 30 सेमी तक लंबे, घनके गुच्छों में लगते हैं । फूलों की पंखुड़ी पर सुंदर लाल लाइनें सी होती हैं । फल नारंगी-लाल रंग के लगभग अंगूर जितने बड़े होते हैं । इसके प्रकंद सुगंधित होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

कुलिंजन हिमालय की पूर्वी पहाड़ियों में तथा पश्चिमी घाट में स्वाभाविक रूप से उगता है । देश के कई क्षेत्रों में इसका रोपण भी किया जाता है ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

कुलिंजन के प्रकंद औषधि में काम आते हैं।

यह औषधि गठिया, श्वास-संबंधी विकार (विशेषकर बच्चों के) तथा खांसी जुकाम में उपयोगी है।

कुलिंजन उदर के रोगों में भी लाभप्रद है। इसमें बलवर्धक, निसंक्रामक तथा दुर्गंध हरने के गुण भी बताए जाते हैं। कुलिंजन में अदरक जैसे उद्दीपक सुगंधित तत्व होते हैं।

अन्य जातियां

कुलिंजन के वंश की एक दूसरी जाति—आल्पीनिआ ऑफ्फीसिनारुम (*Alpinia officinarum* Hance) है; इसे लेसर गलंगल कहते हैं। यह चीन देश का पौधा है। इससे प्राप्त औषधि में गंध और स्वाद अत्यंत तीव्र होते हैं। यह पौधा भारत में उगाया जा सकता है। हमारे देश के पूर्वी क्षेत्र इसके रोपण के लिए उपयुक्त बताये गये हैं। बंगाल तथा उत्तरी भारत में यह काफी पैदा किया जाता है।

1977-78 में भारत ने इस पौधे के लगभग दो लाख रुपये मूल्य के प्रकंदों का आयात किया। कुछ निर्यात भी हुआ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

7. छातिन

(डीटा-बार्क)

वैज्ञानिक नाम : आल्स्टोनिआ स्कोलारिस [*Alstonia scholaris* (L.) Br.]

चित्र 3

(कुल—अपोसाइनेसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—सप्तपर्ण;
असमिया—छाइतेन;
उड़िया—छातियाना;
कन्नड़—मद्दाले;
तामिल—पाला;
तेलुगू—पालैग्न;
बंगला—छात्तिम;
मराठी—सातविन, शैतान;
मलयालम—एड़िलमपाला;
अंग्रेजी—'डेविल्स-ट्री'।

इस वृक्ष को आल्स्टोनिआ नाम, एडिनबरा के एक वनस्पतिज्ञ प्रोफेसर एल्सटन (1685-1760 ई.) के सम्मान में दिया गया था। स्कोलारिस शब्द इसलिए दिया गया था क्योंकि पहले इसकी लकड़ी से विद्यार्थियों के लिखने के लिए तख्ती बनायी जाती थीं।

वर्णन

छातिन का वृक्ष अत्यंत विशाल, लगभग 25 मी तक ऊंचा, सदाहरित होता है। वृक्ष की शाखाओं; पत्तों आदि में सफेद दूध जैसा, किंतु कड़वा, रस होता है। वृक्ष की छाल खुरदरी व भूरी होती है। इसकी शाखाएं चक्करदार होती हैं, अर्थात् एक ही स्थान पर कई-कई निकलती हैं। वृक्ष के निचले भाग में तने के चारों ओर पुश्ते होते हैं अथवा तना काफी चौड़ा होता है। इसके पत्ते 10-20 सेमी लंबे चीमड़, तथा एक गांठ पर 4-7 तक लगे होते हैं। इसके फूल सफेद या केलई रंग

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

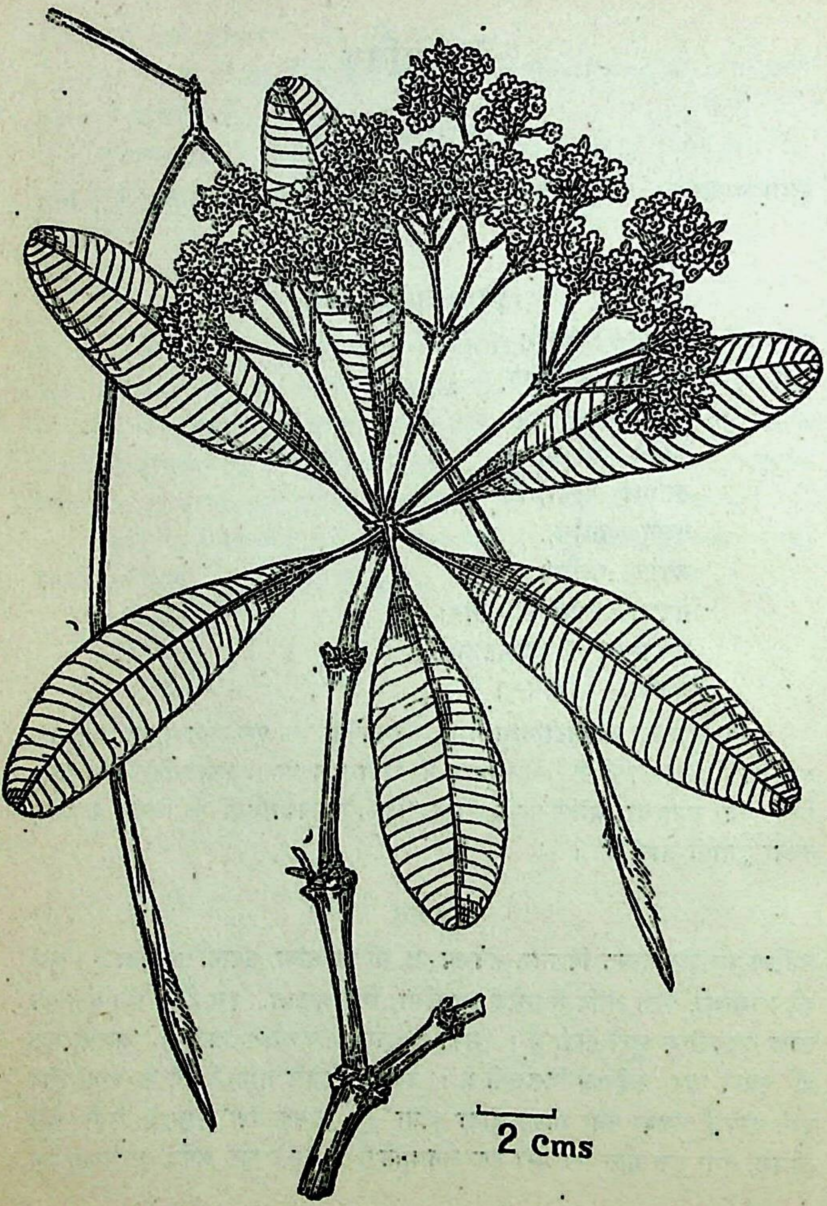

चित्र 3—छातिन (आल्स्टोनिआ स्कोलारिस)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

के, छोटे, अत्यंत सुगंधित, तथा शाखाओं के शीर्ष पर लगे छोटे-छोटे गुच्छों में होते हैं। इसकी फली 30-60 सेमी लंबी, केवल 3-4 मिमी मोटी होती हैं, तथा दो-दो एक साथ लगती हैं। यह बहुत भारी संख्या में आती हैं और इनसे लदा हुआ वृक्ष शोभनीय होता है।

प्राप्ति-स्थान

यह वृक्ष लगभग समस्त भारत में, विशेषकर अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

वृक्ष की छाल औषधि में काम आती है।

यह औषधि पुराने (जीर्ण) अतिसार एवं पेचिश में अत्यंत उपयोगी बतायी जाती है। यह मलेरिया बुखार में उपयोगी है और ज्वर को भी धीरे-धीरे उतार देती है। इसकी विशेषता यह है कि मलेरिया की अन्य औषधियों की भांति इसके सेवन से ज्वर उतरने से पहले न अधिक पसीना आता है, और न ही शरीर में अधिक दुर्बलता आती है। छातिन त्वचा रोगों में भी लाभप्रद है।

यह औषधि रक्तचाप घटाने के लिए भी उपयोगी बतायी गयी है। हाल ही में किए गये कुछ परीक्षणों से छातिन में एंटीबायोटिक तथा शरीर-क्रियात्मक (फ़िज़ियोलोजिकल एक्टीविटी) तत्वों की उपस्थिति सिद्ध नहीं हुई।

अन्य उपयोग

छातिन की लकड़ी मामूली फर्नीचर, पैकिंग बक्से, चाय की पेटियां, पेंसिल व दियासलाई की सींक बनाने के काम आती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

8. कालमेघ

वैज्ञानिक नाम : आंड्रोग्राफिस पानीकुलाटा [*Andrographis paniculata* Wall. ex Nees]

(कुल—अकैंथेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—किरयात, कुलुफनाथ;
संस्कृत—किराता;
कन्नड़—नेलबेवू, नीलबेरु;
गुजराती—लीलू-करियातूं;
तामिल—नेलवेंबू;
बंगला—अलुई, कालमेघ;
मराठी—ओलिकिरयात;
मलयालम—नेलवेपू ।

वर्णन

यह एकवर्षी पौधा लगभग 1 मी तक ऊंचा हो जाता है। इसकी शाखाएं, जो चौकोर होती हैं, अनेक छोटी शाखाओं में विभाजित होकर चारों ओर फैल जाती हैं, और आस-पास की झाड़ियों पर चढ़ जाती हैं। पत्ते लंबोतरे, लगभग 6-8 सेमी लंबे होते हैं। फूल गुलाबी रंग के लगभग 1 सेमी लंबे होते हैं तथा खुली, लंबी फैली हुई शाखाओं पर लगते हैं। फल चिलगोजे जैसे, 1.22 सेमी लंबी संपुटिका होती हैं।

प्राप्ति-स्थान

कालमेघ का पौधा लगभग सारे भारत में पाया जाता है, यह विशेषकर मैदानी प्रदेश में होता है।

औषधीय गुण

कालमेघ की जड़ को छोड़कर समूचा पौधा औषधि में काम आता है।
कालमेघ क्षुधावर्धक तथा पौष्टिक होता है। यह ज्वर, कृमि, पेचिश, दुर्बलता तथा

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पेट के अफारे में उपयोगी है। बच्चों के जिगर तथा अपच के रोग में भी यह लाभप्रद है। बंगाल में कालमेघ के पत्तों से एक घरेलू दवाई बनाते हैं, जिसे अलुई कहते हैं, यह शिशुओं को अपच आदि उदर-रोगों में देते हैं।

पहले ऐसा विचार था कि कालमेघ सर्प के काटने पर भी उपयोगी है, किंतु परीक्षणों में ऐसी धारणा निर्मूल सिद्ध हुई है। परीक्षणों में यह देखा गया है कि कालमेघ में एंटीबायोटिक तथा एंटीटाइफाइड (अर्थात् टाइफाइड ज्वर के तथा कुछ अन्य जीवाणुओं को रोकने वाले) तत्व हैं।

(बस्तर के आदिवासी लोग कालमेघ के पौधों को सरसों के तेल में पीसकर खुजली पर लगाते हैं।)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

9. ईशरमूल

(इंडियन बर्थवर्ट)

वैज्ञानिक नाम : आरीस्टोलोकिआ इंडिका (*Aristolochia indica* L.)

(कुल—आरीस्टोलोकिएसिए)

अन्य नाम : हिंदी—ईश्वरी;
संस्कृत—ईश्वरीमूल;
कन्नड़—ईश्वरीगिड़ा;
गुजराती—अर्कमूल;
तामिल—उटामणिएलाए;
तेलगू—गुंटगंजीरा;
बंगला—ईशरमूल;
मराठी—सापसन।

वर्णन

यह एक आरोही पौधा होता है, इसकी नीचे वाली शाखाएं कड़ी व मोटी होती हैं, किंतु ऊपर पतली व मुलायम हो जाती हैं। इसकी मुख्य जड़ भी मोटी व कड़ी होती है। इसके सब पत्तों का आकार एक-सा नहीं होता, कुछ बहुत संकरे लंबोतरे, कुछ थोड़े अधिक चौड़े, और कुछ शीर्ष की ओर बहुत चौड़े होते हैं। उनके किनारे सीधे या लहरदार होते हैं। फूल छोटे, लगभग 3-4 सेमी लंबे, केलई रंग के, पत्तों के कक्ष में लगे, छोटे गुच्छों में आते हैं। फूलों का अग्र भाग गुलाबी या बैंजनी रंग का, तथा कीपाकार (भोंपू के आकार का) होता है। फल लगभग 5 सेमी लंबे होते हैं। इनका आकार कंडील जैसा बड़ा विचित्र होता है। पकने पर यह नीचे से 6 भाग में विभाजित होते जाते हैं, इनमें कई बीज होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

ईशरमूल भारत के लगभग सभी मैदानी तथा तलहटी प्रदेशों में पाया जाता है। यह विशेषकर दक्षिण एवं पूर्वी भारत में होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

ईशरमूल की शाखाएं व जड़ें, औषधि में काम आती हैं।

यह औषधि अत्यंत नियमित मात्रा में लेने पर ही उपयोगी है। थोड़ी मात्रा में सेवन करने से यह पाचन क्रिया बढ़ाती है तथा मासिक-धर्म ठीक करती है। यह पौष्टिक भी है। अधिक मात्रा में लेने से यह हानिकारक है। यह पाचन-प्रणाली तथा गुर्दों में तीव्र उत्तेजना करके वेग के साथ वमन, मचली, गर्भपात, तथा अन्य विकार पैदा कर सकती है। निर्धारित मात्रा में ईशरमूल उद्दीपक तथा ज्वर-नाशक के रूप में प्रयोग होती है। रक्तपात पर भी इसका कुछ प्रभाव बताते हैं।

अन्य जातियां

ईशरमूल के वंश की एक अन्य जाति कीड़ामारी (आरीस्टोलोकिआ ब्राक्टेओलाटा *Aristolochia bracteolata* Lamk.) हिंदी—गंदन; संस्कृत—धूम्रपत्र; कन्नड़—कालागुर्की; तामिल—गाडियोरेगुर्पाश्क। भारत के मैदानी प्रदेश में होती है, यह प्रधानतः रेगूर या काली मिट्टी वाले क्षेत्रों में उगती हैं। यह कृमि तथा फोड़े व जख्म के लिए उपयोगी है। इसीलिए इसे कीड़ामारी नाम भी दिया गया है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

10. किरमानी-अजवायन

(वर्म-सीड)

वैज्ञानिक नाम : आर्टेमीसिआ मारीटिमा (*Artemisia maritima* L.)

(कुल—आस्टेरेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—छूहरी-अजमूद, किरमला;
संस्कृत—गदाधर;
कश्मीरी—मूर्नी;
पंजाबी – फिल्लौर;
मराठी—किरमानी-ओवा।

व्यापार-कार्य में इसको सैंटोनीना कहते हैं; यह नाम इस पौधे से प्राप्त कुछ तत्वों पर आधारित है।

वर्णन

यह लगभग 1 मी ऊंचा, बहुवर्षी, सुगंधित पौधा होता है। इसकी शाखाएं काफी संख्या में विभाजित होती हैं। पत्ते 2-5 सेमी लंबे, सफेद से होते हैं। शाखाओं के निचले भाग वाले पत्ते पतले-पतले अनेक भाग में कटे होते हैं; प्रायः ऊपर के पत्ते कटे-फटे नहीं होते। फूल अत्यंत छोटे और छोटी पुष्पडोडियों में होते हैं। पुष्पडोडी पतली स्पाइकों में लगती हैं।

प्राप्ति-स्थान

किरमानी अजवायन के पौधे उत्तरी भारत में कश्मीर से कुमाऊं तक लगभग 2,000 से 3,000 मी ऊंचाई वाले पर्वतों पर पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

पौधे की नयी पत्तियों तथा पुष्पडोडियों को सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं। ग्रीष्म-ऋतु के आरंभ में अथवा वसंत-ऋतु के अंत में, अर्थात् जब पौधों पर पुष्प पूरी तरह पक न गये हों, उनके पत्ते तथा पुष्पडोडियां एकत्रित कर लेने चाहिए।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इस समय इनमें 'सैंटोनीन' की मात्रा अधिक होती है, और 'सैंटोनीन' पर ही पौधे के औषधीय गुण निर्भर हैं। फूल विकसित होने पर उनमें 'सैंटोनीन' की मात्रा कम हो जाती है।

'सैंटोनीन' मुख्यतः कृमि नष्ट करने के लिए प्रसिद्ध है, यह विशेषकर थ्रैडवर्म तथा राउंडवर्म पर उपयोगी है। इसके सेवन से कृमि बड़ी अंतड़ी में पहुंच जाते हैं, वहां से किसी रेचक पदार्थ की सहायता से मल के साथ निकल जाते हैं। यह औषधि ज्वर तथा जलोदर में उपयोगी है, तथा उद्दीपक भी है।

अन्य जातियां

किरमानी-अजवायन के वंश की कुछ अन्य जातियां भी उपयोगी हैं।

नागदौना [आर्टेमीसिआ नीलागीरिका *Artemisia nilagirica* (Cl.) Pamp. संस्कृत—नागदमनी, तामिल-मचिपत्रि] भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में पाया जाता है। यह कृमि, दमा आदि में उपयोगी है।

अफसंतीन (आर्टेमीसिआ अबसींथिउम *Artemisia absinthium* L.) कश्मीर में उगता है और पाचक तथा पौष्टिक होता है।

विशेषज्ञों का सुझाव है कि 'सैंटोनीन' देने वाले पौधों की खेती भारत में और अधिक क्षेत्रों में की जाये। भारत में 'सैंटोनीन' की वार्षिक खपत लगभग 1,000 क्विटल है। आर्टेमीसिआ वंश के पौधे हिमालय की ऊंची पहाड़ियों पर 2,000-3,000 मी ऊंचाई वाले स्थानों में, विशेषकर कश्मीर, पंजाब, हिमाचल-प्रदेश तथा उत्तर-प्रदेश में उगाये जा सकते हैं।

प्रतिवर्ष भारत में लगभग 5,000-10,000 क्विटल आर्टेमीसिआ होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

11. अंगूरशफ़ा

(बेल्लाडोन्ना)

वैज्ञानिक नाम : आट्रोपा आकूमिनाटा (*Atropa acuminata* Royle ex Lindley) प्लेट 2

(कुल—सोलानेसिए)

अन्य नाम : हिंदी, कश्मीरी—संग-अंगूर।

व्यापार-कार्य में यह औषधि बेल्लाडोन्ना कहलाती है, यह नाम आट्रोपा वंश की एक यूरोपीय जाति आट्रोपा बेल्लाडोन्ना पर आधारित है; इस जाति का भारत में रोपण किया गया है।

वर्णन

अंगूरशफ़ा का पौधा लगभग 60-90 सेमी ऊंचा, और बहुवर्षीय होता है। इसके पत्ते मटमैले-हरे रंग के 7-15 सेमी लंबे होते हैं। यह शीर्ष तथा आधार दोनों ओर संकरे होते हैं। फूल लगभग 2.5 सेमी लंबे, घंटाकार, पीले, भूरे से रंग के होते हैं और पत्तों के कक्ष में अकेले या दो साथ लगते हैं। फल सरस, 1.5 सेमी व्यास के, गहरे-बैंजनी रंग के या काले होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा कश्मीर में 2,000-3,000 मी ऊंचाई वाले स्थानों में होता है; इसकी खेती भी की जाती है।

औषधीय गुण

पौधे की जड़ों को छोड़ कर अन्य सभी भाग सुखा कर औषधि में प्रयोग होते हैं; ये बेल्लाडोन्ना कहलाते हैं। कुल क्षारीय अंश पौधे के विकास की दशा पर निर्भर करता है। जब फूल खिले हुए हों उस समय कम तथा इसके हरे फलों से युक्त होने पर बहुत अधिक होते है। जड़ें भी औषधि में शामिल की जाती हैं।

पत्तों तथा भूमि के ऊपर के अन्य अंगों से प्राप्त औषधि पसीना बनने की

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

क्रिया को मंद करती है। यह आमाशय की तथा मुंह से लार पैदा करने वाली ग्रंथियों की क्रिया भी मंद करती है। यह पेट के मरोड़ तथा ऐंठन जैसी अन्य अवस्थाओं में शांति पहुंचाती है। इसमें तीव्र एंटीस्पास्मोडिक गुण होते हैं; यह दमा तथा कुकुर-खांसी में भी लाभप्रद है।

पौधे की जड़ों से प्राप्त औषधि में भी वही गुण होते हैं, जो पत्तों और शाखाओं से प्राप्त औषधि में। किंतु जड़ों में कुछ विषैले तत्व बताये जाते हैं, और इसलिए जड़ों से प्राप्त औषधि सेवन-के बजाय, गठिया, वातशूल (न्यूरेलजिआ) तथा सूजन आदि पर बाहरी लेप के काम आती है।

1977-78 में लगभग 60 क्विटल पत्तों तथा जड़ों का निर्यात किया गया।

अन्य जातियां

अंगूरशफ़ा के वंश की एक अन्य जाति आट्रोपा बेल्लाडोन्ना (*Atropa belladonna* L.) यूरोप में होती है; यह भारत के पर्वतीय प्रदेश में उगायी जाती है। इसकी जड़ें (जिन्हें बेल्लाडोन्ना रेडिक्स कहते हैं) तथा पत्ते (जिन्हें बेल्लाडोन्ना फ़ोलिउम कहते हैं) औषधि में प्रयोग होते हैं, यह पौष्टिक तथा शमक होते हैं। यह मरोड़ व ऐंठन में लाभप्रद है। यह (एट्रोपीन की भांति) आंखों की पुतली को चौड़ा करती है। बेल्लाडोन्ना से बनी अनेक औषधियां नेत्र-रोगों के लिए मरहम, आंख में डालने की दवा, आदि बनाने के काम आती हैं। विषपान के कारण हुए कुछ प्रकार के विकारों को दूर करने के लिए बेल्लाडोन्ना विषनाशक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

ऐसा अनुमान है कि भारत में बेल्लाडोन्ना के पत्तों से प्राप्त औषधि की वार्षिक खपत लगभग 25 क्विटल है, और जड़ों से प्राप्त औषधि की 100 क्विटल है।

1970-71 के दौरान लगभग एक लाख रुपये मूल्य के इस क्षारीय पदार्थ का आयात किया गया।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

12. नीम

(मारगोसा)

वैज्ञानिक नाम : आज़ाडीराक्टा इंडिका (*Azadirachta indica* A. Juss.)

चित्र 4

(कुल—मीलिएसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—निंब;
उड़िया, बंगला—नीम;
कन्नड़—वेवु;
गुजराती—लींवड़ो;
तामिल, तेलुगू—वेप;
मराठी—निंब;
मलयालम—आर्य-वेप ।

वर्णन

नीम भारत का सुपरिचित वृक्ष है । इसके पत्ते संयुक्त, पिच्छाकार होते हैं । उनमें अनेक छोटे पत्रक होते हैं । फूल छोटे, सफेद, सुगंधित होते हैं, और पत्तों के कक्ष में लम्बे गुच्छों में लगते हैं । नीम के फल सरस, 1.2-2 सेमी लम्बे होते हैं; कच्चे फल (निंबोरी) हरे, तथा पके फल पीले रंग के होते हैं । फलों में एक बीज होता है ।

प्राप्ति-स्थान

नीम भारतीय प्रायद्वीप में स्वाभाविक रूप से उगता है, इसका रोपण तो देश के सभी भागों में किया जाता है । यह विशेषकर नगरों में तथा सड़कों के किनारे लगाया जाता है ।

औषधीय गुण

नीम के पत्ते, तने और जड़ों की छाल औषधि के काम आते हैं ।

छाल, तिक्त, पौष्टिक तथा स्तंभक होती है; यह पार्यायिक ज्वरों (जैसे मलेरिया) में लाभप्रद है । यह ऐसे ज्वरों के क्रम को भंग कर देती है । यह त्वचा रोगों पर भी लाभदायक है ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

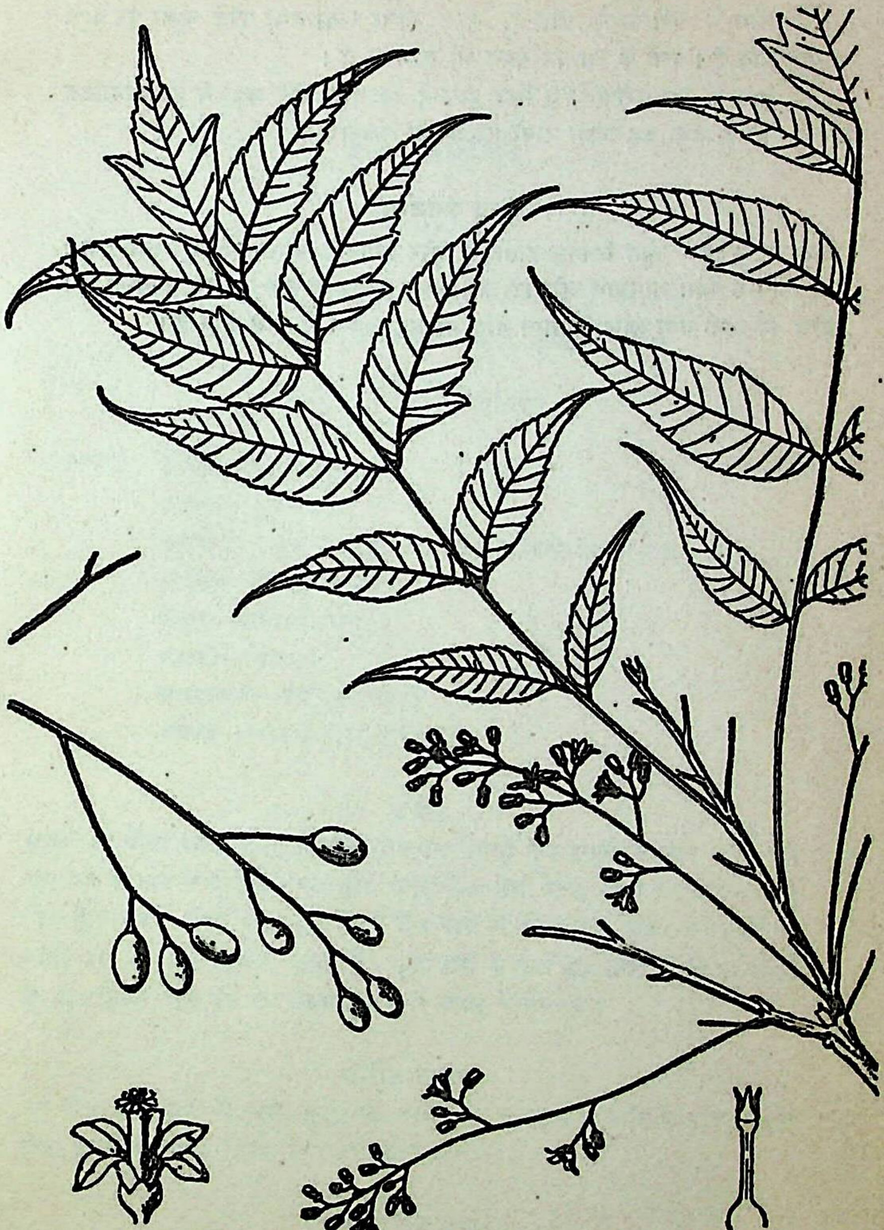

चित्र 4—नीम (आज़ाडीराक्टा इंडिका)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

नीम के पत्ते कड़वे होते हैं, और त्वचा रोगों तथा फोड़े फुंसी पर बहुत प्रयोग होते हैं। पत्तों के रस का सेवन भी लाभप्रद है।

हाल के कुछ परीक्षणों से सिद्ध हुआ है कि पत्तों और जड़ों में एंटीबायोटिक तत्त्व होते हैं, तथा वह त्वचा रोगों पर अवश्य लाभप्रद हैं।

अन्य उपयोग

नीम की लकड़ी बहुत टिकाऊ होती है और इमारती काम के लिए उपयोगी है। यह कृषि में काम आनेवाले औज़ार, तथा अन्य वस्तुएं बनाने के लिए उपयोगी है। बीज की खली तथा छाल से प्राप्त गोंद भी अनेक रूप से काम आते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

13. ब्राह्मी

(बाकोपा)

वैज्ञानिक नाम : बाकोपा मोनिएरी [*Bacopa monnieri* (L Wettst.]
(अस्वीकृत नाम : हेर्पेस्टिसमोन्निएरा, कूनेइफ़ोलिआ)

(कुल—स्क्रोफुलेरिएसिए)

अन्य नाम : हिंदी—सफेद-चमनी;
संस्कृत—सौम्यलता;
गुजराती—जल-ब्राह्मी, जल-नेवरी, कड़वी-नेवरी, वाम;
तामिल—सांब्राणेएलाये;
तेलुगू—सांब्राणेअखलू;
मराठी—घोल;
मलयालम—वर्ण, नीरब्रह्मी;
अंग्रेजी—'थाइम-लीव्ड-ग्राटिओला'।

वर्णन

ब्राह्मी का पौधा छोटा होता है और भूमि पर फैलता है। इसकी शाखाएं और पत्ते मुलायम गूदेदार से होते हैं। पत्ते छोटे, प्रायः 1-2 सेमी लम्बे, शीर्ष पर अधिक चौड़े होते हैं, उनपर सूक्ष्म काले दाग होते हैं। पत्तों में डंठल नहीं होते। शाखाओं की गांठों पर भी जड़ें निकल आती हैं। फूल पत्तों के कक्ष में, छोटे डंठलों पर लगते हैं; फूल हल्के नीले रंग के, लगभग 1 सेमी व्यास के होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा नम भूमि में, जैसे कुएं, नदी नाले, खेत व तालाब आदि के पास अधिक होता है, और समस्त भारत में पाया जाता है।

औषधीय गुण

ब्राह्मी का समूचा पौधा औषधि में काम आता है।

यह औषधि नाड़ियों के लिए पौष्टिक होती है। यह मिरगी, आक्षेप, बेहोशी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

व नाड़ियों की दुर्बलता आदि रोगों में दी जाती है। यह कब्ज को दूर करती है तथा मूत्रल है। पत्तों का रस बच्चों की खांसी या श्वास नलों की सूजन में दिया जाता है। इसके सेवन से कै (वमन) हो जाती है, इसलिए शांति पड़ जाती है।

पत्तों के रस को पेट्रोल में मिलाकर गठिया के दर्द में लेप करते हैं। जिन बच्चों को खांसी हो, उनकी छाती पर, ब्राह्मी के समूचे पौधे को उबालकर, उसकी पुलटिस लगायी जाती है। ब्राह्मी में रक्त शुद्ध करने के भी गुण बताये जाते हैं।

ब्राह्मी में 'ब्रह्मीन' नामक एल्केलाइड होता है, जो हृदय के लिए पौष्टिक होता है।

हाल ही में ब्राह्मी के एल्कोहोल में बने अर्क का प्रभाव जानने के लिए जानवरों पर कुछ परीक्षण किये गये हैं। इसमें शमक अथवा स्वापक गुण विद्यमान हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

14. रसौत

(वेर्बेरिस, इंडियन-बार्बेरी)

वैज्ञानिक नाम : बेर्बेरिस, आरिस्टाटा (*Berberis aristata* DC.)

चित्र 5,6

(कुल—वेर्बेरिडेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—किंगोड़ा, किलमोरा, दारुहल्दी,
संस्कृत—दारु-हरिद्र;
कश्मीरी—रसवत;
तामिल—मरामंजल;
पंजाबी—कश्मल;
बंगला—दारु-हरिद्र;
मराठी—दारु-हलद;
मलयालम—मरादरिंशिना।

वर्णन

यह एक बड़ा झाड़ीनुमा, कंटीला पौधा होता है। इसकी लकड़ी पीली होती है, और शाखाएं सफेद या पीली-भूरी सी होती हैं। पत्ते प्रायः लम्बे, सीधे या शाखित कांटों के कक्ष में निकलते हैं, और एक गांठ पर कई होते हैं। पत्ते चीमड़, 8-10 सेमी लम्बे, शीर्ष पर अधिक चौड़े होते हैं, उनके किनारे प्रायः नुकीले, दंतुर होते हैं। पत्तों का रंग ऊपर हरा और नीचे केलई-सा होता है। उन पर पतली शिराएं होती हैं। रसौत के फूल अत्यन्त छोटे, पीले रंग के होते हैं, वह 5-7 सेमी लम्बे गुच्छों मे लगते हैं। फल सरस, अंडाकार, गहरे-नीले या बैंजनी रंग के होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

रसौत के पौधे हिमालय पर्वत के 2,000-3,000 मी ऊंचाई के क्षेत्रों में पाये जाते हैं। ये दक्षिण में नीलगिरी पर्वत पर भी होते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

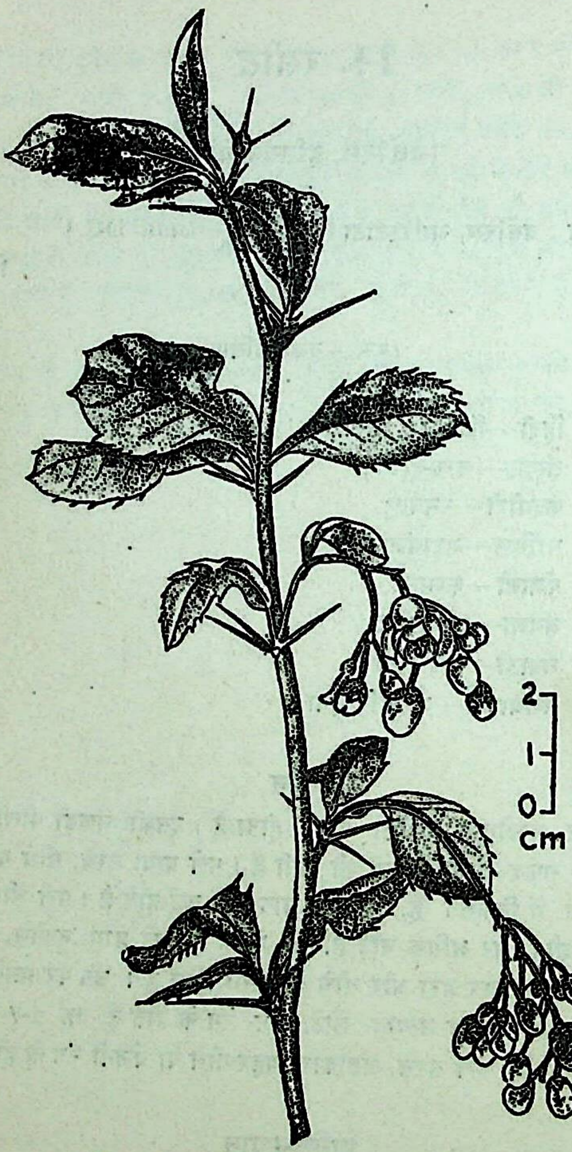

चित्र 5—रसौत (बेर्बेरिस आरिस्टाटा)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चित्र 6—रसौत (बेर्बेरिस लीसिउम)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

रसौत नामक औषधि इस पौधे की तथा इस वंश की कुछ अन्य जातियों (जैसे बेर्बेरिस एशिआटिका तथा बेर्बेरिस लीसिउम) के पौधों की जड़ों से प्राप्ति होती है। (चित्र-6)

रसौत की जड़ों से 'बेर्बेरीन' नामक एल्केलाइड प्राप्त होता है। रसौत की औषधि बनाने के लिए पौधों के नीचे वाली शाखाओं और जड़ों के टुकड़े तथा जड़ों की छाल को पानी में उबाला जाता है। इस पानी को छान कर अर्ध ठोस (सेमीसालिड) अवस्था तक सुखाते हैं। यही द्रव्य रसौत कहलाता है। यह जल में घुल सकता है।

रसौत को घी और फिटकरी में अथवा अफीम और नीबू के रस में, मिलाकर आंख के पपोटों पर लगाना नेत्र-रोगों में लाभदायक है। परीक्षणों द्वारा यह दिखाया गया है कि रसौत फोड़ों, जख्मों पर भी लाभदायक है। रसौत न केवल बाहर से लगायी जाती हैं, किन्तु फोड़ों के आसपास की त्वचा में रसौत के इंजेक्शन भी लगाये जाते हैं।

रसौत ज्वरनाशक, मृदु-रेचक तथा पौष्टिक भी है। यह पाचन के विकारों को दूर करती है। खरगोशों पर किये गये कुछ परीक्षणों से यह सिद्ध कर दिया गया है कि हैजा तथा तीव्र अतिसार में रसौत लाभ करती है। बहुत समय तक रसौत मलेरिया ज्वर में भी दी जाती थी, किन्तु अब यह सिद्ध हुआ है कि ज्वर उतारने में तो यह लाभदायक नहीं है, वरन् केवल मलेरिया ज्वर की शीघ्र पहचान कराने में सहायक होती है। परीक्षणों द्वारा दिखाया गया है कि रसौत श्वास एवं हृदय की क्रिया को मन्द करती है। इस औषधि में क्षय रोग के जीवाणुओं को रोकने के भी गुण बताये गये हैं।

अन्य उपयोग

रसौत (बेर्बेरिस आरिस्टाटा) की जड़ों व शाखाओं से एक पीला रंग प्राप्त होता है, जो चमड़ा कमाने तथा रंगने के काम आता है।

प्रतिवर्ष लगभग 2,000-3,000 क्विटल जड़ें प्रयोग में आती हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

15. पुनर्नवा

वैज्ञानिक नाम : बोएर्हाविआ डीफ्फूजा (*Boerhavia diffusa* L.)

(कुल—निक्टाजिनेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—विषखोपरा, सांठी, सुर्वरी;
संस्कृत—रक्तकांदा, पुनर्नवा;
कन्नड़—अडकपुट्टनगिडा;
गुजराती—मोटो-सातोड़ो, नाहनो-वसेड़ो, झींड़को-वसेड़ो;
तामिल—मुक्कारट्टेई;
तेलुगू—अटकी, अटिक-ममीड़ी;
बंगला—पुनर्नवा;
मराठी—तंबाड़ी-वसु;
मलयालम—तविड़ाम,
अंग्रेजी—'हॉगवीड', 'हॉर्स-पर्सलेन'।
(मध्य प्रदेश—खोड़िया, पथरचट्टा।)

इस पौधे के अधिकांश स्थानीय नाम तथा व्यापार का नाम पुनर्नवा, संस्कृत नाम पर आधारित हैं।

वर्णन

यह पौधा प्रायः भूमि पर फैलता है अथवा अन्य पौधों या झाड़ियों का सहारा पाकर ऊंचा भी चढ़ जाता है। इसकी शाखाएं विभाजित तथा फैली हुई होती हैं। प्रत्येक गांठ पर दो पत्ते होते हैं। दोनों मंडलाकार होते हैं, किन्तु एक छोटा, लगभग 1.5-2 सेमी व्यास का और दूसरा बड़ा, लगभग 2.5-4 सेमी व्यास का होता है। पत्तों के आधार हृदयाकार होते हैं; पत्ते नीचे सफेद और ऊपर हरे होते हैं। फूल अत्यन्त छोटे, लाल से रंग के होते हैं। वह पत्तों के कक्ष से निकले, लम्बे, डंठलों पर, छोटे गुच्छों में लगते हैं। फलों पर महीन धारियां और ग्रंथियां होती हैं।

प्राप्ति-स्थान

पुर्ननवा लगभग समस्त भारत में पाया जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

पौधे के सभी भाग, विशेषकर जड़ें, पुनर्नवा नामक औषधि में काम आते हैं।

इस औषधि में 'पुनर्नवीन' नामक एल्केलाइड होता है। यह औषधि मुख्यतः मूत्रविरेचक के रूप में प्रयोग होती है और जलोदर, पीलिया व सूजाक में दी जाती है। यह रेचक भी है। थोड़ी मात्रा में लेने से यह पौधा दमा रोग में भी उपयोगी बताया है, किन्तु अधिक मात्रा में सेवन करने से कै हो जाती है। हाल ही में जानवरों पर किये गये परीक्षणों में इस औषधि का मूत्रल गुण ठीक सिद्ध हुआ है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

16. पलास

(बूटेआ)

वैज्ञानिक नाम : बूटेआ मोनोस्पेर्मा [*Butea monosperma* (Lamk.) Taub.]

(अस्वीकृत नाम : बूटेआ फ्रोंडोसा)

(कुल—फ़ावेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—ढाक, टेसू;
संस्कृत—पलाश;
उर्दू—पलास-पापड़ा;
कन्नड़—मुत्तुंकदगिडा;
गुजराती—खाकारो, केसुड़ानो-झाड़;
तामिल—पलासु;
तेलुगू—पलासमू;
बंगला—पलाश।
अंग्रेजी—'फ्लेम-ऑव-दि'फ़ारेस्ट'।
(अजमेर-मेरवाड़ा—चौर)

अंग्रेजी में इस वृक्ष को 'फ्लेम-ऑव-दि-फ़ोरेस्ट' (Flame of the Forest) कहते हैं। यह नाम इसलिए दिया गया है कि पुष्पन के समय लाल-नारंगी फूलों से लदे इसके वृक्ष जंगल में आग की लपटों जैसे दिखते हैं।

वर्णन

पलास भारत का सुपरिचित वृक्ष है। इसके लाल-नारंगी रंग के फूलों से लदे वृक्ष बहुत सुन्दर दिखायी देते हैं। यह एक मझोला पतझड़ी वृक्ष होता है। इसके पत्तों में तीन पत्रक होते हैं। नीचे वाले दो पत्रक 8-12 सेमी व्यास के होते हैं, तीसरा पत्रक बड़ा होता है। पत्रकों की नीचे की सतह मुलायम रोंएंदार होती है, और उस पर मोटी शिराएं होती हैं। पत्ते शीतकाल में झड़ जाते हैं, और फरवरी-मार्च मास के लगभग, जब शाखाएं पर्णहीन होती हैं, वृक्ष पर फूल आने लगते हैं। फूल छोटे, घनके गुच्छों में आते हैं, और शीघ्र सारा वृक्ष नारंगी फूलों से लद जाता

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

है। पलास के फल चपटी फली जैसे होते हैं, फली में एक बीज होता है। वृक्ष का वैज्ञानिक नाम मोनोस्पेर्मा एक बीज के कारण ही दिया गया है।

प्राप्ति-स्थान

पलास का वृक्ष समस्त भारत में होता है; यह मुख्यत: मध्य तथा पश्चिम भारत के पतझड़ी या मिश्रित वनों में पाया जाता है। यह प्राय: मैदानी या निचली तलहटियों में अधिक होता है।

औषधीय गुण

पलास से प्राप्त लाल गोंद, जिसे 'बंगाल-किनो' (या 'बूटेआ-गम') कहते हैं, तथा इस वृक्ष के बीज औषधि में काम आते हैं।

गोंद में टैनीन होते हैं, और अतिसार में अत्यन्त लाभप्रद है। बीज में कृमि नाशक गुण हैं, वह राउंडवर्म तथा टेपवर्म के इलाज में प्रयोग होते हैं। राउंडवर्म पर उनका प्रभाव परीक्षणों द्वारा भी सिद्ध किया गया है। पलास के बीज 'सैंटोनीना' के स्थान पर भी प्रयोग किये जा सकते हैं। बीज नींबू के रस में पीसकर खुजली (धोबी के धुले कपड़े पहनने से कभी-कभी होने वाली खुजली) पर लगाते हैं। बीज दाद पर भी उपयोगी हैं। पलास की जड़ों की छाल का रक्तचाप पर कुछ प्रभाव बताते हैं।

अन्य उपयोग

पलास लाख के कीड़े बढ़ाने के लिए बहुत उपयुक्त है। पलास के फूलों से पीला रंग निकलता है। लकड़ी पानी के अन्दर भी शीघ्र नहीं गलती, इसलिए कुओं पर रखने की चौखट व पानी खींचने के बर्तन आदि बनाने के काम आती है। यह इमारती काम में तथा ईंधन की तरह भी प्रयोग होती है। पत्ते बड़ी मात्रा में पत्तल व दौने बनाने के काम आते हैं। वे चारे के लिए भी उपयोगी हैं।

अन्य जाति

पलासलता (बूटेआ सूपेर्बा *Butea superba* Roxb.) एक मोटी लता होती है। इसके पत्तों का रस गर्मियों में बच्चों के फोड़े-फुंसियों पर उपयोगी होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

17. अमलतास

(कास्सिआ)

वैज्ञानिक नाम : कास्सिआ फ़ीस्टुला (*Cassia fistula* L.) चित्र 7

(कुल —सीसलपीनिएसिए)

अन्य नाम : हिंदी— किराल, किलवली, सिनार;
संस्कृत —सुवर्णका;
असमिया—सोनारु;
कन्नड़ —कक्केगिडा;
गुजराती—गरमाड़ो;
तामिल —कोन्नेई, अलस;
तेलुगू — रेला;
बंगला —सोनाली, बंदरलाठी, सोंदाल;
मराठी— वेहावा, जंबा;
मलयालम—कृतमलम, कोन्नई;
अंग्रेजी—'इंडियन-लैवर्नम' ।

अमलतास के वैज्ञानिक नाम में फ़ीस्टुला शब्द का संबंध इस वृक्ष के फलों की बांसुरी जैसी आकृति से है ।

वर्णन

यह एक छोटा या मंझोला ऊंचाई का वृक्ष होता है । इसके पत्ते संयुक्त होते हैं । पत्रक बड़े, 5-10 सेमी लंबे, चमकीले, गहरे-हरे रंग के होते हैं । अमलतास के फूल लगभग 3.5-5 सेमी व्यास के, पीले रंग के, और बहुत बड़े, लटकते हुए गुच्छों में होते हैं । फल 50-60 सेमी लंबे, बांसुरी की-सी आकृति के, काले या चमकीले-गहरे-कत्थई रंग के होते हैं । जब वृक्ष फूलता है, तो बहुत सुंदर दिखाई देता है, और वन में दूर से ही पहचाना जा सकता है । फल आने की अवस्था में भी वृक्ष शोभनीय होता है । अमलतास के पत्ते ग्रीष्म-ऋतु के आरंभ में, अर्थात् मार्च से मई तक, गिर जाते हैं, किंतु इस समय वृक्ष फूलों से भर जाता है, तथा समूचा वृक्ष दूर से पीला दिखता है ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

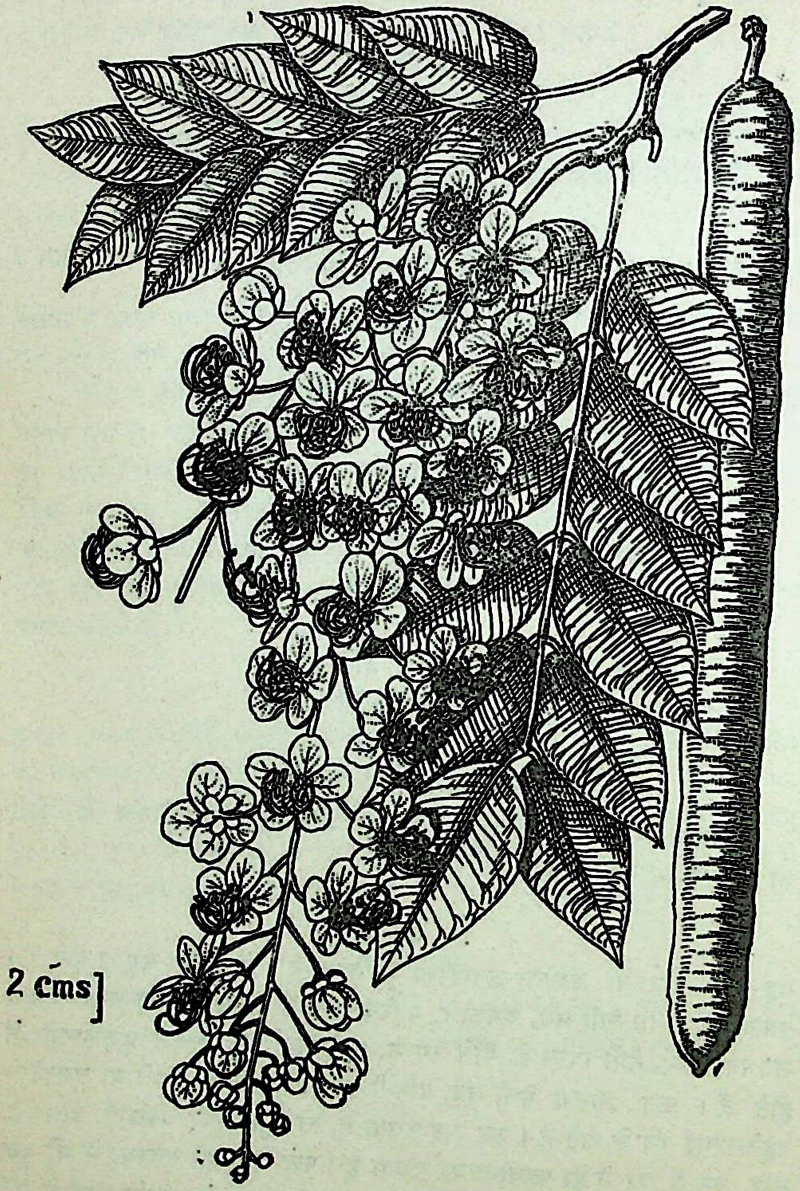

चित्र 7—अमलतास (कास्सिआ फ़ीस्टुला)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्राप्ति-स्थान

अमलतास 1,500 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग समस्त भारत में ही मिलता है। यह नम या सदाहरित वनों में अधिक होता है। सड़कों के किनारे तथा उद्यान में लगाने के लिए अमलतास का वृक्ष बहुत उपयुक्त समझा जाता है, और प्रायः ही लगाया जाता है।

औषधीय गुण

यद्यपि इस वृक्ष के सभी भागों में कुछ न कुछ औषधीय गुण बताये जाते हैं, परंतु इसके फल बहुत उपयोगी है और भारत के मान्य औषध-कोश में भी उनका उल्लेख है। फल का गूदा—जिसे 'कास्सिआ-पल्प' कहते हैं—प्रख्यात रेचक औषधि है। अधिक मात्रा में सेवन करने से यह हानिकारक है, और अत्यधिक पतले दस्त, मतली तथा उदरशूल हो सकते हैं। प्रायः अकेली इस औषधि का सेवन नहीं किया जाता, इसको सनाय के पत्तों में मिलाकर लेते हैं।

अन्य उपयोग

अमलतास की छाल को 'सुमारी' कहते हैं। इसमें टैनीन प्रचुर मात्रा में होते हैं। इसकी लकड़ी मजबूत व कड़ी होती है और मकान, पुल तथा कृषि-संबंधी नाना प्रकार के औजार बनाने के काम आती है।

अन्य जातियां

अमलतास के वंश की एक अन्य जाति सनाय (प्लेट 3—कास्सिआ आंगुस्टी-फ़ोलिआ *Cassia angustifolia* Vahl; अंग्रेजी—'इंडियन-सेन्ना'; टिनेवेली-सेन्ना' संस्कृत-भूपद्म; मलयालम-नीलावाक) एक छोटी झाड़ी होती है; यह अरब व सोमालीलैंड का पौधा है, और दक्षिण भारत आदि में इसका रोपण किया गया है। इसके पत्ते तथा फल रेचक और कब्ज के पुराने रोगियों के लिए उपयोगी हैं। यदि बच्चों को अपना दूध पिलानेवाली स्त्रियां इसका सेवन करें तो दूध में रेचक तत्व आ जाते हैं।

इस वंश की कुछ अन्य जातियां भी औषधि में काम आती हैं।

1977-78 में 1.2 करोड़ रुपये मूल्य के अमलतास के फलों व पत्तियों का निर्यात किया गया।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

18. सदाबहार

(कथारांथुस)

रंगीन प्लेट I

वैज्ञानिक नाम : कथारांथुस राउज़ (*Catharathus roseus* (L.) G. Don.)

(अस्वींकृत नाम : विंका रोज़ेआ)

(कुल -- अपोसाइनेसिए)

अन्य नाम : बंगाली—नयनतारा, गुलफेरिंगी;
मलयालम—उपामालारी;
मराठी—सदाफल;
उड़िया -- अपंस्काति;
तामिल—सुदुकाडु मल्लिकाइ;
तेलुगू—विल्लागेन्नेरु;
पंजाबी—रतनजीत।

वर्णन

यह लगभग 1 मी तक ऊंचा सीधा खड़ा रहने वाला पौधा होता है जिसकी पत्तियां अंडाकार होती हैं तथा एक दूसरे के विपरीत ओर होती हैं। फूल 2 या 3 के गुच्छों में लगते हैं। फूलों की पंखुड़ियों का रंग सफेद या लाल-गुलावी, एक विशेष प्रकार की पंखुड़ियों का रंग सफेद तथा उनके निचले भाग पर गुलावी या लाल रेशे होते हैं। फल-बहुवीजीय, पुटिकाकार।

प्राप्ति-स्थान

इस पौधे की जन्मभूमि मेडागास्कर है पर अब यह दोनों गोलार्धों के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। अकसर इसकी खेती की जाती है और जल्दी ही यह फैलने लगता है।

औषधीय गुण

इस पौधे की जड़ें औषधियुक्त होती हैं। यह विषाक्त मानी जाती है तथा साथ ही यह क्षुधावर्धक भी होती है। हाल की खोजों से पता चला है कि यह बहुमूल्य

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

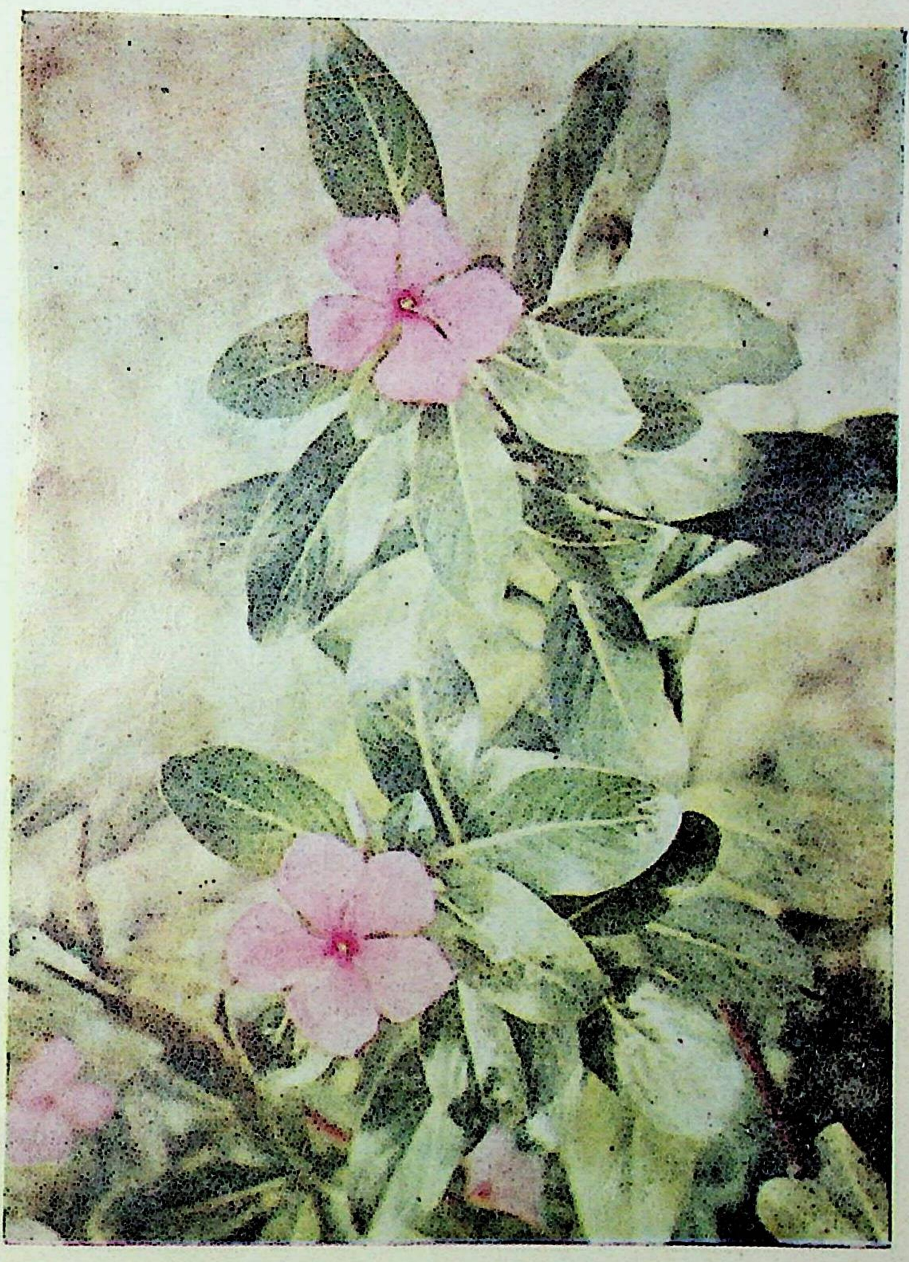

प्लेट-1 – सदावहार (कथारांथुस राउज) (देखिये पेज 48)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

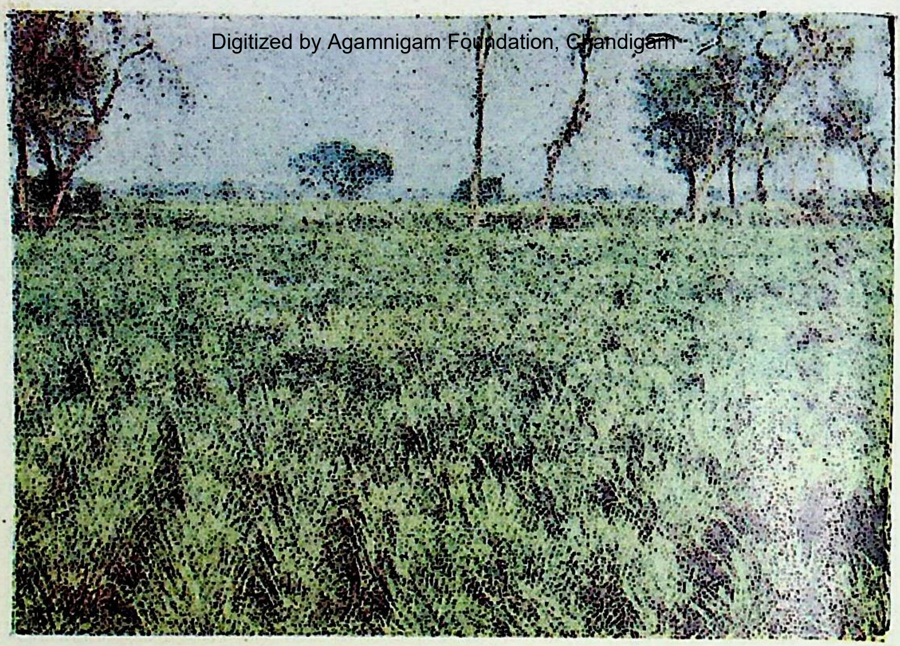

प्लेट-2—रोशा-घास (सींबोपोगोन मार्टिनी) (देखिये पेज 66)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

प्लेट-5—डिओस्कोरिया (देखिये पेज 72)

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्लेट-3 —तिलपुष्पी (डीजीटालिस पुर्परेआ) (देखिये पेज 70)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्लेट-4 —काला धतूरा (डाटूरा मेटेल) (देखिये पेज 69)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्लेट-6— नीलकंठ (इंडियन जेंशियन) (जेंटिआना कुरु) (देखिये पेज 93)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

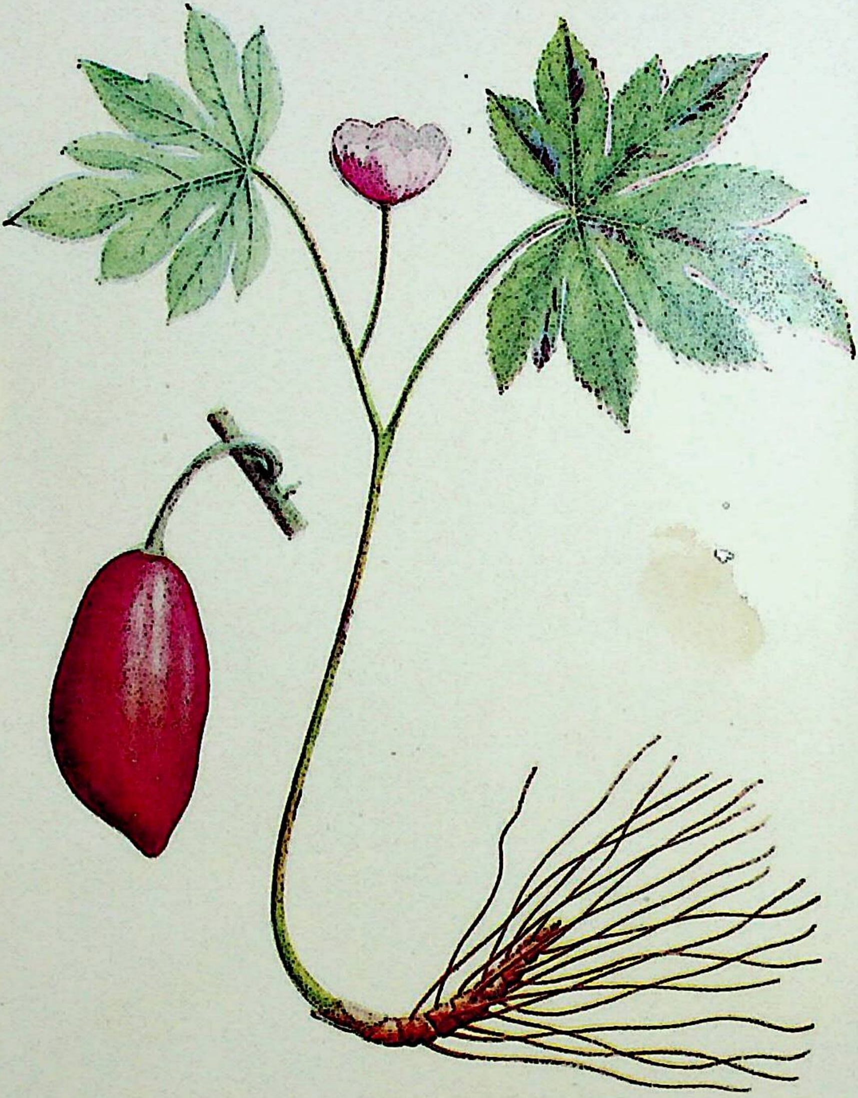

प्लेट-7—पापरी (इंडियन पोडोफील्लुम) पोडीफील्लुम हेक्सांड्राम (देखिये पेज 143)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्लेट-8—सर्पगंधा (राउवॉल्फिआ सेर्पेटीना) (देखिये पेज 149)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

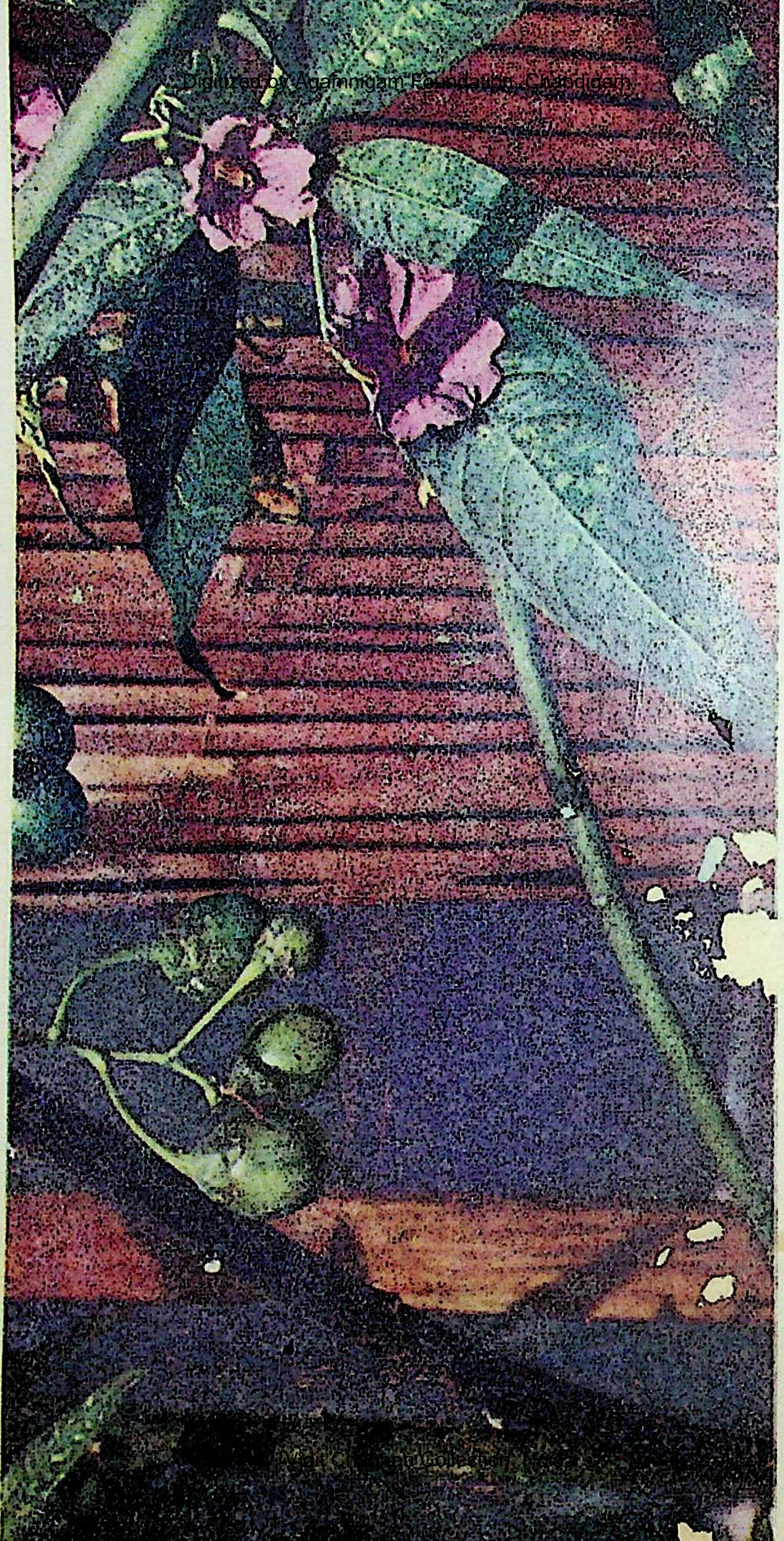

Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

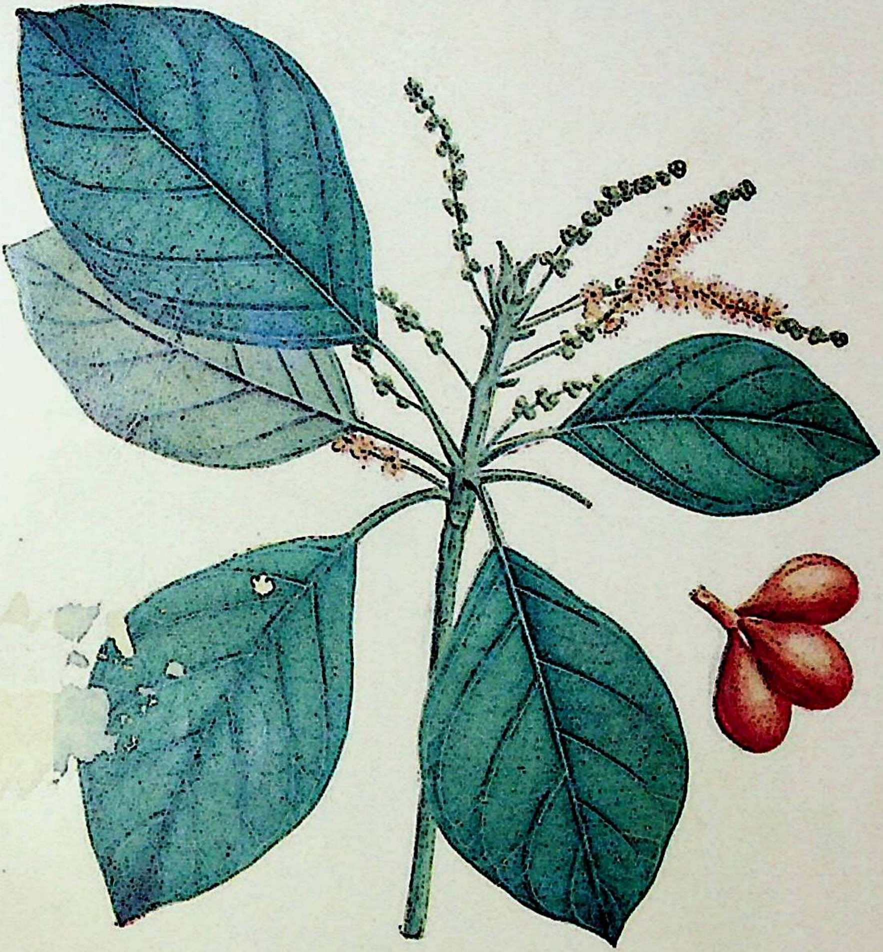

प्लेट-10—वहेड़ा (वेल्लेरिक माइरोवलान) (टर्मिनालिना वेल्लीरिका)
(देखिये पेज 180)

←प्लेट-9—कटेरी (कंटकारी) (सोलानुम सूरात्तेंसे) (देखिये पेज 164)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

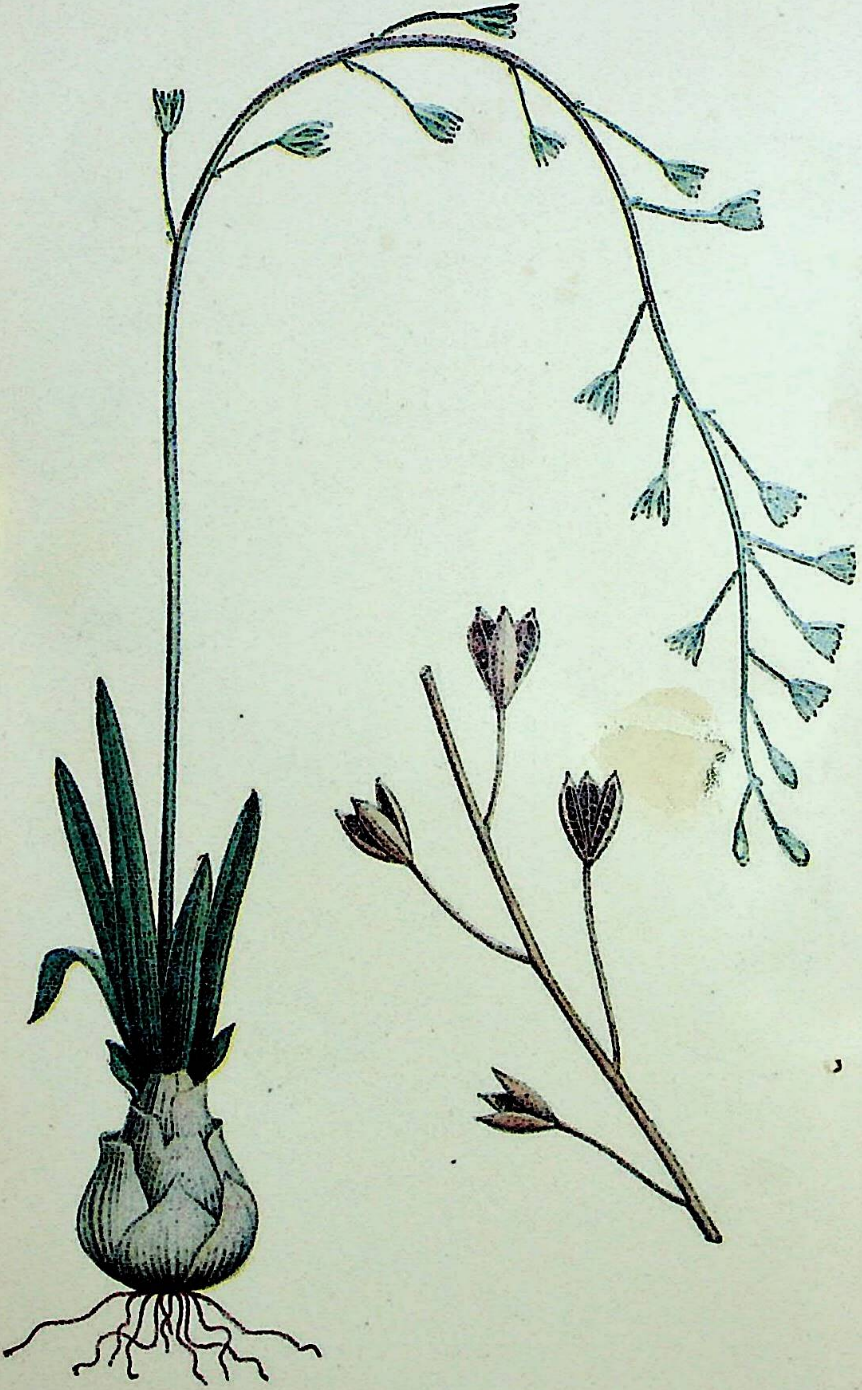

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

प्लेट-11 — जंगली-प्याज (इंडियन स्कविल) (ऊर्जीनिआ इंडिका) (देखिये पेज 191)

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

एलकेलाइडों की स्रोत भी है जो राउवोल्फिया जाति के पौधों से प्राप्त एलकेलाइडों की तरह का होता है। सदाबहार की जड़ों में सर्पगंधा से अधिक आज्मालाइसाइन तथा सर्पेंटाइन मिलता है; उनमें सर्पेपाइन भी पाया जाता है।

इसके एलकेलाइडों में उपशामक गुण काफी अधिक मात्रा में होता है।

पशुओं के साथ किए प्रयोगों से पता चलता है कि सदाबहार के कुछ क्वाथ ल्यूकेमिया में लाभ पहुंचाते हैं।

भारत से प्रतिवर्ष लगभग 6000 क्विटल जड़ों का निर्यात होता है।

अन्य उपयोग

यह एक बहुत सुंदर बागीचीय पौधा है जो साल-भर फूलों से लदा रहता है, इसीलिए इसे सदाबहार कहते हैं। यह पौधा काफी सुगठित होता है तथा सजावटी बागवानी में काफी लोकप्रिय है।

अन्य जाति

कथारांथुस पुसिलस (अप्रसिद्ध नाम—विंसा पुसिला, लोच्नेरा पुसिला; संस्कृत-शंखाफलि; तामिल-मिलागाई पूंडु) अपतृण के रूप में पाया जाता है तथा कटिवात में उपयोगी बताया जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

19. ब्रह्मसंडूकी

(सेंटेल्ला)

वैज्ञानिक नाम : सेंटेल्ला एशिआटिका [*Centella asiatica* (L.) Urban]

(अस्वीकृत नाम : हीड्रोकोटीले एशिआटिका)

(कुल—एपिएसिए)

अन्य नाम : हिंदी—वृह्मी;
संस्कृत—मंडूक-पर्णी;
कन्नड़—वंदेलगा;
गुजराती—वर्मी;
तामिल—वेल्लारि-एलाये;
तेलुगू—बोखुड़ू, ताएले-टांगडू-अखल्;
पंजाबी—ब्रह्मी-बूटी;
बंगला—ठानखुरिया;
मराठी—ब्रह्मी;
अंग्रेजी—'इंडियन-पेनीवर्ट'।
(नागा क्षेत्र, असम—अघिउये;
सिल्चर—तूनिमानकोणि;
सिक्किम—गोरतापरी)

इस पौधे का संस्कृत नाम मंडूकपर्णी पौधे के पत्तों के आकार पर आधारित है।

वर्णन

यह पौधा भूमि पर फैलता है, तथा इसकी विसर्पी शाखाओं की गांठों पर भी जड़ें फूट आती हैं। पत्ते छोटे, 2-4 सेमी व्यास के, या थोड़ा अधिक, वर्त्तुल अथवा वृक्काकार होते हैं। उनके किनारे दंतुर होते हैं। फूल छोटे, गुलाबी या लाल, 3-6 के गुच्छों में होते हैं। फल भी छोटे, जौ के दाने जैसे होते हैं, और उन पर 7-9 उभरी हुई धारियां-सी होती हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्राप्ति स्थान

यह पौधा समस्त भारत में नम स्थानों में होता है और नदी, नाले व तालाब के किनारे, या सिंचे हुए खेत तथा लॉन में प्रायः ही उग आता है।

औषधीय गुण

ब्रह्मी के पौधे के ताजे पत्तों और टहनियों को उखाड़कर सुखा लेते हैं, विशेषकर यही औषधि में काम आते हैं। जड़ और बीज भी प्रयोग होते हैं।

ब्रह्मी के पत्ते अथवा समूचा पौधा पानी में उबालकर उसका क्वाथ कुष्ठ रोग में देते हैं। ब्रह्मी में 'एशियाटिकोसाइड' नामक तत्व होता है, इस ही के कारण इस पौधे को कुष्ठ रोग पर लाभप्रद बताते हैं। जानवरों पर जो परीक्षण किये गये हैं, उनसे यह सिद्ध हुआ है कि ब्रह्मी में त्वचा, बाल तथा नाखूनों की बढ़ोतरी को तीव्र करने के गुण अवश्य हैं।

यह पौधा कुछ प्रकार के क्षय रोग में, मस्तिष्क के लिए, तथा शरीर की भिन्न क्रियाओं को संतुलित करने के लिए भी उपयोगी बताया गया है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

20. सोमराजि

(सेंट्राथेरुम)

वैज्ञानिक नाम : सेंट्राथेरुम आंथेलमींटिकुम

[*Centratherum anthelminticum* (Willd.) Kuntze]

(अस्वीकृत नाम : वेर्नोनिआ आंथेलमींटिका)

(कुल—आस्टेरेसिए)

अन्य नाम : हिंदी —कालीजीरी, वनजीरा;
संस्कृत —सोमराजि;
उर्दू जंगली-जीरी;
कन्नड़ —काडु-जीरिगे;
गुजराती—काली-जीरी;
तामिल—कट्टु क्षीरगम;
तेलुगू —अदविजीलकर;
पंजाबी, बंगला —सोमराज;
मराठी — कालेन-जीरी;
मलयालम -- कट्टुजीरकम;
गढ़वाली— काला-जीरा ।

वैज्ञानिक नाम में आंथेलमींटिकुम शब्द का अर्थ है, कृमिनाशक; यह इस औषधि के गुण पर आधारित है ।

वर्णन

यह प्रायः लंबा, सीधा बूटा होता हैं; इसके तने एवं पत्तों पर सूक्ष्म रोम होते हैं। पत्ते 6-10 सेमी लंबे होते हैं । उनके किनारे दंतुर और आधार संकरे होते हैं । पुष्प छोटे 1.5-2.5 सेमी व्यास के गुच्छों में लगते हैं, जिन्हें केपीटुलम कहते हैं । प्रत्येक केपीटुलम में 30-40 गुलाबी रंग के फूल होते हैं । कई-कई केपीटुलम साथ होते हैं। फल जिन्हें 'एकीन' कहते हैं, छोटे 4.5-6 मिमी लंबे, सौंफ के दाने से, किंतु रोमिल होते हैं। उन पर 10 उभरी हुई धारियां होती हैं । 'एकीन' के शीर्ष पर गुलाबी या लाल रोमगुच्छ होता है ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा 1,500 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग समस्त भारत में पाया जाता है। यह आबादियों या बस्तियों के आस-पास, बेकार स्थानों में प्रायः ही उग आता है।

औषधीय गुण

पौधे के ताजे बीज (जितने ताजे हो सकें) लेकर सुखा लिये जाते हैं। यही सोमराजि औषधि है।

जैसा कि पौधे के वैज्ञानिक नाम आंथेलमींटिकुम से स्पष्ट है, सोमराजि एक उपयोगी कृमिनाशक औषधि है। यह थ्रैडवर्म नामक कृमि पर बहुत उपयोगी है। पुरानी पुस्तकों में इस औषधि में उत्तेजक, एंटीसेप्टिक और मूत्रल गुण भी बताये गये हैं, किन्तु परीक्षणों द्वारा यह सब सिद्ध नहीं हो सका है। थ्रैडवर्म पर यह उपयोगी है, इसकी पुष्टि तो अस्पतालों में किये गये परीक्षणों से भी हुई है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

21. ईपेकाक

(ईपेकाकुआन्हा)

वैज्ञानिक नाम : सेफाएलिस ईपेकाकुआन्हा

[*Cephaelis ipecacuanha* (Brot.) A. Rich.] प्लेट 5

(कुल—रुबिएसिए)

वर्णन

यह एक छोटा झाड़ीनुमा पौधा होता है, इसकी जड़ें पतली होती हैं, और दूर तक भूमि के समतल फैलती हैं। इसके प्रकंदों पर सारे में गोल-गोल छल्ले जैसे निशान होते हैं। पत्ते आमने-सामने जोड़े में आते हैं। पत्ते निशिताग्र होते हैं, उनके किनारे सीधे होते हैं। फूल सफेद, छोटे तथा छोटे गुच्छों में होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा भारत का देशज नहीं है; यह अमेरिका के ब्राजिल देश का है, परन्तु अब इसकी खेती असम, बंगाल तथा दक्षिण भारत में की जाती है।

औषधीय गुण

पौधे के प्रकंद ही औषधि में काम आते हैं, और ईपेकाक के नाम से प्रख्यात हैं।

यह औषधि अमीबा-पेचिश और भूख कम होने के रोग में लाभप्रद है। इसके अधिक सेवन से कै हो जाती है, अर्थात् यह वमनकारी है। इस गुण के कारण इसे खांसी में शांति पहुंचाने के लिए भी प्रयोग करते हैं। यह स्वेदजनक भी है, अर्थात इसके सेवन से पसीना आता है।

ईपेकाक की खेती दुनिया में सबसे अधिक पश्चिमी बंगाल में होती है। यह उपज भारत की ईपेकाक की आंतरिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त है। पश्चिमी बंगाल में इसकी उपज का लक्ष्य प्रतिवर्ष 500 क्विंटल सूखी जड़ है। ईपेकाक जड़ें काफी निर्यात की जा सकती हैं इसलिए खेती में विस्तार कराये जाने की स्वीकृति मिल गयी है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

22. कुनैन

(सींकोना)

Cinchona spp. (कुल—रुबिएसिए)

इस औषधि का कुनैन नाम 'क्विनीन' शब्द पर आधारित है। 'क्विनीन' ही इस वृक्ष की छाल का मुख्य उपयोगी तत्व है।

सींकोना भारत में स्वाभाविक रूप से नहीं होता। इस वंश की कोई जाति यहां स्वयं नहीं उगती, किन्तु कई जातियों का रोपण किया जाता है। इनमें से चार मुख्यतः उपयोगी हैं।

1. सींकोना कालीसाया (*Cinchona calisaya* Wedd. 'कालीसाया बार्क', 'पेरुवियन बार्क'); यह वृक्ष नीलगिरी पर्वत तथा सिक्किम में उगाया जाता है।

2. सींकोना आफ्फ़ीसिनालिस (*C. officinalis* L.. 'क्राउन बार्क', लोक्सा बार्क); यह नीलगिरी क्षेत्र में ही लगाया जाता है।

3. सींकोना सुक्कीरुब्रा (*C. cuccirubra* Pav. ex Klotzsch, 'रैड बार्क'), यह सतपुरा पहाड़ियों में, सिक्कम में तथा दक्षिण भारत में उगाया जाता है।

4. सींकोना लेजेरिआना (*cedgeriana* Moens) 'लेंजर बार्क') : यह बंगाल, असम तथा दक्षिण भारत में उगाया जाता है। भारत में 'सींकोना' की सबसे अधिक प्रचलित जाति यही है।

पहली तीन जातियों के पौधे प्रायः बड़े या मझोले वृक्ष होते हैं। सींकोना लेजेरियाना का पौधा झाड़ीनुमा, फैला हुआ सा होता है।

औषधीय गुण

इन वृक्षों की छाल सुखाकर औषधि में काम आती है। सींकोना में अनेक उपयोगी तत्व होते हैं, इनमें क्विनीन सबसे प्रमुख है।

यह ज्वरनाशक (विशेषकर मलेरिया में) गुण के लिए प्रसिद्ध है। इस औषधि के सेवन से ज्वर तुरन्त उतर जाता है और नियमित मात्रा में सेवन करते रहने से फिर से ज्वर नहीं होता।

कुनैन कुछ प्रकार के बैक्टीरिया द्वारा उत्पन्न रोगों को भी दूर करती है। इसकी बनी औषधियां निमोनिया, अमीबा-पेचिश और नेत्ररोगों में भी उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

कुनैन से बने मरहम, तेल, घोल आदि गठिया के दर्द पर लगाने के, तथा कुल्ला या गरारा करने के भी काम आते हैं।

कुनैन अधिक मात्रा में सेवन करने से मतली व चक्कर आ जाते हैं, तथा नेत्र एवं कर्ण थोड़े समय के लिए, अथवा कभी-कभी पूरी तरह से, नष्ट होने का भय रहता है। गर्भवती स्त्रियों तथा हृदय रोगियों को कुनैन की बनी औषधियां नहीं दी जाती हैं।

1980 में उससे प्राप्त लगभग 1.7 करोड़ रुपये मूल्य की कुनैन की छाल तथा पदार्थों का निर्यात किया गया।

अन्य उपयोग

कुनैन की छाल से प्राप्त क्विनीन पर, तथा इसके अन्य तत्वों पर, आधारित अनेक कीटनाशी पदार्थ कपड़ों आदि की सुरक्षा के लिए प्रयोग होते हैं। यह जूं मारने के लोशन बनाने के भी काम आती है। क्विनीन निकालने के बाद बची हुई छाल को टैनीन पदार्थों के लिए भी प्रयोग कर लेते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

23. दारचीनी

(सीन्नामोन)

वैज्ञानिक नाम : सीन्नामोमुम वेरुम
(*Cinnamomum verum* Presl. syn. *C. zeylanicum* Blume) चित्र 8

(कुल—लॉरेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—दालचीनी;
संस्कृत—दारुशिला;
उड़िया, गुजराती, मराठी, बंगला—दालचीनी;
कन्नड़—लवंगपट्टा, लवंगचेक्के;
तमिल—कन्नलवंगपट्टे ।

इस वृक्ष के वैज्ञानिक नाम में जेईलानिकुम शब्द यह संकेत करता है कि इस वक्ष का संबंध सीलोन, अर्थात् लंका देश से है । यह लंका में प्राकृत रूप से उगता है ।

वर्णन

दारचीनी का वृक्ष सदाहरित होता है, अर्थात् यह पूर्णतः पर्णहीन कभी नहीं होता । यह लगभग 6-8 मी तक ऊंचा हो जाता है। इसके पत्ते बड़े, अंडाकार, मोटे चीमड़ निशिताग्र, ऊपर चमकीले-गाढ़े हरे रंग के और नीचे हल्के-हरे रंग के होते हैं । इनमें 3 या 5 मोटी शिराएं होती हैं जो पत्तों के आधार से शीर्ष तक अथवा मध्य तक स्पष्ट दिखाई देती हैं । फूल अत्यन्त छोटे होते हैं और बड़े रोमिल गुच्छों में लगते हैं। फल गहरे-बैंजनी या नीले रंग के, अंडाकार या दीर्घायत 1.5-2 सेमी लंबे होते हैं। उनमें एक बीज होता है ।

प्राप्ति-स्थान

दारचीनी का वृक्ष दक्षिणी भारत में लगभग 1,500 मी तक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में होता है, कम ऊंचे स्थानों में यह अधिक होता है । कुछ स्थानों पर इसका रोपण भी किया गया है ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

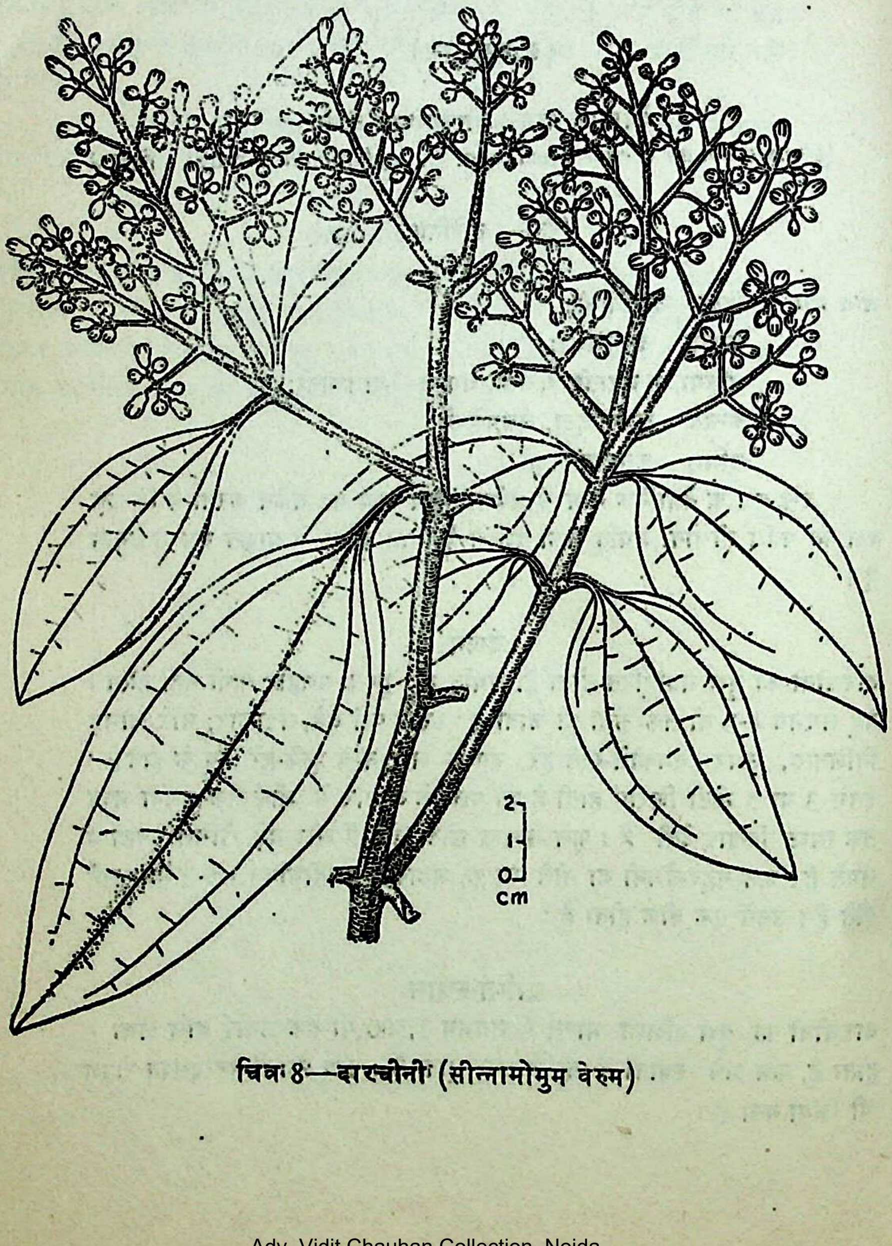

चित्र 8—दारचीनी (सीन्नामोमुम वेरुम)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

वृक्ष की शाखाएं काट कर उनकी छाल उतार ली जाती हैं। अन्दर की सूखी छाल को दारचीनी कहते हैं, यह छाल औषधि में काम आती है।

दारचीनी अतिसार, मतली और वमन रोगों में उपयोगी है। यह खाने के मसालों में बहुत प्रयोग होती है। छाल के तेल में भी यह गुण होते हैं जो छाल में। कुछ विचार से तेल का प्रयोग ही अधिक उपयुक्त होता है, यह पाचक, वायुसारी और उद्दीपक (उत्तेजक) होता है। यह पेट का अफ़ारा कम करता है और अंतड़ियों के लिए बलकारक है। इससे कुछ प्रकार के कीटाणु तथा कवक (फंगस) भी नष्ट हो जाते हैं।

अन्य उपयोग

पत्तों से प्राप्त तेल मिठाइयों तथा साबुन को सुगंधित करने के काम आता है। यह गठिया के दर्द में भी लगाया जाता है। ऐसा अनुमान है कि भारत में दारचीनी की छाल की वार्षिक खपत लगभग 40,000 क्विटल है। इस वृक्ष के रोपण के लिए दक्षिण भारत, बंगाल, असम तथा अंडमान-द्वीप अधिक उपयुक्त स्थान बताये हैं।

1980 में लगभग 3 लाख रुपये मूल्य की छाल का निर्यात किया गया।

अन्य जातियां

दारचीनी के वंश की अन्य अनेक जातियां औषधि में काम आती हैं।

कपूर (सीन्नामोमुम कांफ़ोरा *Cinnamomum camphora* (L) Presl. अंग्रेजी—'कैंफर-ट्री') : यह वृक्ष नीलगीरी पहाड़ियों में तथा उत्तरी भारत के कुछ उद्यानों में लगाया गया है। इसकी लकड़ी व पत्तों से कपूर निकाला जाता है। कपूर मुख्यत: मोच, सूजन, गठिया आदि पर लगाने के काम आता है। कुछ प्रकार के अतिसार तथा हृदय रोगों में कपूर की बनी औषधियों का सेवन भी कराया जाता है

कपूर नाना प्रकार से व्यवसायिक तथा घरेलू कार्यों में प्रयोग होता है। भारत में प्रतिवर्ष 5,000 क्विटल से भी अधिक कपूर का आयात होता है। आजकल कपूर तुलसी के वंश के एक पौधे (आसीमुम किलिमंडशारीकुम) से भी बनाया जा रहा है। इसका वर्णन तुलसी के अध्याय में भी किया गया है।

तेजपात (सीन्नामोमुम तामाला (*Cinnamomum tamala* Nees & Eberm. संस्कृत—तमालपत्र; तामिल—तालीश-पत्तीरीया; अंग्रेजी—'इंडियन-कास्सिआ'): यह पूर्वी हिमालय पर्वत के कुछ क्षेत्रों में होता है, विशेषकर असम और बंगाल में। इसके पत्ते भोजन के मसाले के काम आते हैं। इनमें वायुसारी गुण होता है और यह उदरशूल, मरोड़ अथवा अतिसार में उपयोगी होते हैं।

1981 में 17 लाख रुपये से अधिक मूल्य का तेजपात भारत से निर्यात किया गया।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

24. हिरनतूतिया

(कॉलशीकुम)

वैज्ञानिक नाम : कॉल्चीकुम लूटेउम (*Colchicum luteum* Baker)

प्लेट 4

(कुल—लीलिएसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—हिरण्यतूथ;
कश्मीरी—इरकिम, मूंड;
पंजाबी—सुरंजाम-कड़वी ।

वर्णन

यह एकवर्षीय पौधा होता है, इसके कंद (कॉर्म) भूरे या कत्थई रंग के, शंक्वाकार होते हैं, वह एक ओर थोड़ा चपटे और दूसरी ओर गोल होते हैं । पत्ते संकरे, 15-30 सेमी तक लम्बे, 0.8-1.5 सेमी चौड़े, शीर्ष पर अधिक चौड़े होते हैं । फूल प्रायः 2.5-4 सेमी व्यास के 7-10 सेमी लम्बे, पीले रंग के होते हैं । फल 2.5-4 सेमी लम्बे होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

हिरनतूतिया हिमालय की उत्तर-पश्चिमी श्रेणियों में लगभग 700-2,800 मी ऊंचाई वाले क्षेत्र में, और प्रायः वनों के बाहरी खुले भाग में या घास के मैदानों में, उगता है ।

औषधीय गुण

पौधा फूलने से पहले उसके कंद इकट्ठा कर लिये जाते हैं, यही औषधि में काम आते हैं और 'कॉलशीकुम कॉर्म' कहलाते हैं । कुछ पौधे बीज बनने के लिए रोक लिए जाते हैं । उनके पके बीज औषधि में काम आते हैं, इन्हें 'कॉलशीकुम सीड' कहते हैं ।

कंद में मुख्य तत्व 'कॉलशीसीन' होता है । यह गठिया (गाउट) की सूजन व दर्द पर उपयोगी है । अल्पतालों में इस औषधि से परीक्षण किये गये है । बहुत समय तक थोड़ी और नियमित मात्रा में कंद से बनी औषधि के सेवन से लगभग

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

60 प्रतिशत रोगियों को लाभ हुआ। इस औषधि से एक हानि भी है, यह अंतड़ियों में तीव्र जलन पैदा कर सकती है। इसके शमन के लिए अगूरशफ़ा (बेल्लाडोन्ना) या खुरासानी-अजवायन का सेवन बताया गया है।

हिरनतूतिया के बीज में, विशेषकर बीज के छिलके में, 'कॉल्शीसीन' होती है, और इस कारण बीज भी कंद की तरह प्रयोग होते हैं। कैंसर पर 'कॉल्शीसीन' का प्रभाव देखने के लिए कुछ परीक्षण किये गये हैं। यह देखा गया कि इस औषधि के उपचार से कैंसर कोशिकाओं की बढ़ोतरी कुछ कम हो जाती है, तथा ऐसे कोष्ठकों पर एक्सरे (X'Ray) चिकित्सा भी अच्छी प्रकार हो पाती है। कुछ अनुसंधान-शालाओं में इस विषय पर कार्य हो रहा है। कैंसर के उपचार में हिरनतूतिया का प्रयोग अभी आरंभ नहीं हुआ है।

ऐसा अनुमान है कि भारत में हिरनतूतिया की वार्षिक खपत लगभग 25 क्विटल है। यह पौधा हिमालय की ऊंची श्रेणियों में 1,500-3,000 मी ऊंचाई वाले क्षेत्रों में उगाया जा सकता है।

अन्य उपयोग

'कॉल्शीसीन' पौधों के प्रजनन-संबंधी अनुसंधान कार्य में काम आती है। इसके प्रयोग से पौधों की कोशिका एवं क्रोमोसोम के विभाजन में कुछ परिवर्तन आ जाते हैं और पौधों में बहुगुणिता (पॉलीप्लॉइडी) उत्पन्न कर दी जाती है। खाने की फसलों व फलों आदि के पौधों पर प्रायः ही ऐसे परीक्षण किए जाते हैं, और शोधकार्य द्वारा वनस्पतिज्ञ अधिक हृष्टपुष्ट, निरोगी व अधिक पैदावार देनेवाली किस्में पैदा कर लेते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

25. मिश्मी तीता

(कॉप्टिस)

वैज्ञानिक नाम : कॉप्टिस टीटा (*Coptis teeta* Wall)

(कुल-रैननकुलेसिए)

अन्य नाम : असमी, बंगला—तीता;
मिश्मी—अरोंग, पावा;

वर्णन

यह एक छोटा पौधा है, इसमें तना लगभग नहीं होता। मूल काष्ठमय, सुनहरे पीले होते हैं, उन पर घनके रेशे होते हैं। इनका स्वाद अत्यंत कड़वा होता है। पत्ते संयुक्त व चिकने होते हैं। पत्रक 5.0-7.5 सेमी लंबे, चौड़े-भालाकार होते हैं। फूल सफेद छोटे तथा संख्या में एक से तीन तक होते हैं। फल में काले रंग के अनेक बीज होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा अरुणाचल प्रदेश की मिश्मी पहाड़ियों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

इस पौधे के प्रकंद सुखा कर औषधि में प्रयोग करते हैं। यह पौष्टिक तथा उदर रोगों में उपयोगी होते हैं, यह रुक-रुक कर आने वाले ज्वर में लाभदायक हैं।

इस पौधे में बेर्बेरीन वर्ग के तत्व होते हैं।

पौधे की जड़ें अत्याधिक संख्या में उखाड़े जाने के कारण वनों में इस पौधे की प्राकृतिक उपज कम होती जा रही है, किंतु इसकी कृषि को प्रोत्साहन मिल रहा है। इसका निर्यात अब वर्जित है।

अनुमान है कि प्रति वर्ष भारत में लगभग 40 क्विटल प्रकद निकाले जाते हैं।

जंगली पौधों की तुलना में कृषि द्वारा उगाए हुए पौधों में प्रकंद कहीं अधिक मात्रा में होते हैं।

थालीक्टुम तथा पीक्रोर्हीजा (कुटकू) के फूल व प्रकंद मिश्मी तीता में मिलावट के रूप में प्रयोग किये जाते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

26. झाड़ी-हल्दी

(कॉस्सीनिउम)

वैज्ञानिक नाम : कॉस्सीनिउम फेनेस्ट्राटुम
[*Coscinium fenestratum* (Gaertn.) Colebr.]

(कुल—मेनीस्पेर्मेसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—दारुहरिद्र;
कन्नड़—मरामंजलि, दोड्डामरदाअरिसिना;
तमिल—मरामंजलि;
तेलुग—मनुपसुपू;
बंगला—हल्दी-गाछ;
मराठी—वेनीवेल।

वर्णन

यह एक बड़ी, मोटी, आरोही लता होती है, इसकी छाल पीली होती है। नये पौधों की शाखाएं अत्यंत रोमिल होती हैं। पत्ते चीमड़, चमकदार, ऊपर चिकने, नीचे मृदु-रोमिल, वर्त्तुल या अंडाकार और निशिताग्र होते हैं। उन पर 5 या 7 मोटी शिराएं होती हैं। फूल छोटे होते हैं; और छोटे गुच्छों में लगते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा दक्षिण भारत में, विशेषकर पश्चिमी घाट प्रदेश में होता है।

औषधीय गुण

झाड़ी-हल्दी की शाखाएं सुखाकर औषधि में काम आती हैं। इनमें 'बेर्बेरीन' नामक तत्व होता है।

यह औषधि ज्वर, शरीर की दुर्बलता और कुछ प्रकार के अजीर्ण में उपयोगी है। यह एंटीसेप्टिक भी है और इस कारण फोड़े या जख्म पर लगाने के काम आती है। परीक्षणों से ज्ञात होता है कि पौधे की जड़ों में कुछ एंटीबायोटिक तत्व होते हैं।

अन्य उपयोग

झाड़ी-हल्दी की शाखाओं से एक पीला रंग निकलता है जो हल्दी के साथ मिलाकर, या अलग, प्रयोग किया जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

27. केऊ

(कॉस्टुस)

वैज्ञानिक नाम : कास्टुस स्पेसिओसुस [*Costus speciosus* (Koen. ex Retz.) Sm.]

(कुल—ज़ींजीवेरेसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—कुस्थ;
कन्नड़—चंगलवकोष्टू;
गुजराती—पोकरमूल;
तामिल—कुरारम;
तेलुगू—किमुक;
पंजाबी—केवली;
बंगला—कुस्ट;
मराठी—पेंवा;
मलयालम—कोएट्टम।

वर्णन

यह पौधा सीधा, लगभग एक मीटर तक ऊंचा होता है, इसके मूल प्रकंद जैसे होते हैं। पत्ते 15-30 सेमी लंबे होते हैं, उनमें डंठल अत्यंत छोटे या नहीं होते। पत्तों की निचली सतह रोमिल होती हैं। फूल नलिकाकार और सफेद होते हैं, उनके सहपत्र लाल होते हैं। फूल घनकी 5-13 सेमी लंबी स्पाइकों में लगते हैं। फल लाल, लगभग 2 सेमी व्याास के संपुट होते हैं, बीज काले होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा लगभग सारे भारत में, विशेषत: मैदानी तथा 120 मी ऊंचाई तक के क्षेत्रों में मिलता है। प्राय: ही ऊसर भूमि तथा नगरों, सड़कों व खेतों के निकट रिक्त स्थानों में भी उग आता है। पौधे के सुंदर पुष्पों तथा उपयोगी प्रकंदों के लिए केऊ की कृषि भी की जाती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

केऊ के हरे या सूखे प्रकंद औषधि में काम आते हैं। प्रकंदों में मूसीलेज और किंचित कषाय होता है। इनमें पौष्टिक तथा रेचक गुण बताये जाते हैं। उत्तर प्रदेश में जड़ों को शोधक, पौष्टिक, कृमिनाशक तथा कामोद्दीपक गुणों के लिए प्रयोग करते हैं। जाड़े सर्दी, ज्वर, खांसी, त्वचा रोग, सर्पदंश तथा अपच में भी प्रयोग होती हैं।

गर्भनिरोधी औषधियां आदि बनाने के लिए स्टीराइड संश्लेशरण के हेतु केऊ भी एक स्वदेशी स्रोत उपलब्ध है, किंतु इसमें डायोस्जेनिन की मात्रा डिओस्कोरेआ से कम है।

केऊ से प्राप्त स्टीराइडल पदार्थों में गर्भरोधक, आमवातहर तथा सूजन कम करने के गुण परीक्षणों द्वारा सिद्ध हुए हैं। कुछ पदार्थों में स्थानिक निश्चेतक (लोकल अनेस्थेसिआ) के गुण भी दर्शाए गये हैं।

प्रकंदों से प्राप्त क्षारों में मरोड़ व हृदय रोग में उपयोगी अंश पाए गये हैं, वे मत्रविरेचक भी होते हैं। यह केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर अवसादक भी हैं।

अन्य उपयोग

प्रकद पकाने के बाद खाने के काम में भी आते हैं। उनमें स्टार्च तो बहुत होता है, किंतु अन्य खाद्य प्रकंदों व जड़ों की तुलना में इनमें रेशे बहुत होते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

28. रोशा-घास

वैज्ञानिक नाम : सींबोपोगोन मार्टिनी

[*Cymbopogion martinit* (Roxb.) Watson.]

(कुल—पोएसिए) रंगीन प्लेट II

अन्य नाम : हिंदी—रोहिण, गंधेल, मिर्चियागंध।

वर्णन

यह एक बड़ी घास होती है; इसके पत्तों में एक सुगंधित तेल होता है, जिसके कारण उन्हें थोड़ा-सा मसलने से बहुत अच्छी सुगंध आती हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह घास लगभग समस्त भारत में, मुख्यतः शुष्क प्रदेश में होती है।

औषधीय गुण

इस घास के पत्तों से एक तेल निकलता है जिसे रोशा कहते हैं, यह औषधि में प्रयोग होता है। रोशा त्वचा रोग, गंजापन तथा कमर के दर्द की चिकित्सा में उपयोगी है, इसका लेप किया जाता है। जिगर खराब होने पर पित्त आदि विकारों में इसका सेवन भी बताया है।

अन्य उपयोग

रोशा का तेल मच्छरों को भगाने के तेल बनाने के काम भी आता है।

अन्य जातियां

रोशा के वंश की कुछ अन्य जातियां भी औषधि में काम आती हैं, किंतु उनका प्रयोग बहुत प्रचलित नहीं है। उनसे प्राप्त तेल प्रायः सुगंधित होते हैं, और साबुन, तेल आदि वस्तुओं को सुगंधित करने के ही काम आते हैं।

सींबोपोगोन सीट्राटुस (*Cymbopogon citratus* (DC.) Stapf) भारत के अनेक क्षेत्रों में उगायी जाती है। इससे प्राप्त तेल 'वेस्ट-इंडियन लेमनग्रास आयल' कहलाता है। इस घास के पत्तों को कहीं-कहीं चाय की तरह प्रयोग करते हैं, इसकी बनी चाय अच्छी स्वादिष्ट होती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सींबोपोगोन फ्लेक्सुओसुस (*Cymbopogon flexuosus* (Nees ex Steud.) Watson) दक्षिण भारत, उत्तर प्रदेश और सिक्किम में होती है। इससे 'लैमन-ग्रास आयल' निकलता है। इस तेल में विटामिन 'ए' होता है। यह तेल, साबुन, आदि को सुगंधित करने के लिए भी प्रयोग होता है। केरल में इसकी खेती की जाती है।

1976-77 में भारत से लगभग 1.1 करोड़ रुपये मूल्य का लेमनग्रास तेल निर्यात किया गया।

सींबोपोगोन नार्डुस (*Cymbopogon nardus* (L.) Rendle) भी भारत के कई क्षेत्रों में मुख्यतः दक्षिण भारत में होती है। इस घास से प्रख्यात 'सिट्रोनेला' तेल निकलता है। इस तेल से भी मच्छर आदि कीड़े भगाने की औषधियां बनती हैं। 'सिट्रोनेला' तेल की भारत में वार्षिक खपत लगभग 200 क्विंटल है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

29. धतूरा

[स्ट्रामोनिउम]

वैज्ञानिक नाम : डाटूरा स्ट्रामोनिउम (*Datura stramonium* L.)

रंगीन प्लेट IV

(कुल—सोलेनेसिए)

अन्य नाम : हिंदी, संस्कृत, पंजाबी—धतूरा;
कन्नड़—मद्दगुणिके;
गुजराती—धोलो-धतूरो;
तामिल—उमात्तई;
तेलुगू—दत्तूरमु;
मलयालम—उम्मत्तई, उम्मम;
बंगला—शेटधुतरो ।

वर्णन

यह एक झाड़ीनुमा लगभग 1 मी ऊंचा पौधा होता है; इसके पत्ते अंडाकार और दंतुर होते हैं । फूल बहुत बड़े, सफेद रंग के होते हैं । फल अंडाकार होते हैं और 4 भागों में विभाजित होते हैं । समूचे फल पर छोटे या लंबे कांटे से होते हैं । फल में बहुत-से बीज होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा हिमालय-पर्वत की ऊंची श्रेणियों में लगभग 2,500 मी ऊंचाई तक के स्थानों में होता है । यह मध्य तथा दक्षिण भारत के पर्वतों पर भी मिलता है ।

औषधीय गुण

पौधों के सुखाये हुए पत्ते, फूल वाली ऊपर की शाखाएं तथा बीज औषधि में प्रयोग होते हैं ।

पत्तों में मुख्यतः 'हिओसिआमीन' नामक तत्व होता है, इसलिए यह औषधि

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

उसी प्रकार काम में लायी जाती है जैसे अंगूरशफ़ा (बेल्लाडोन्ना अथवा खुरासानी-अजवाइन) ।

यह श्वासनली की सूजन व दमा में लाभप्रद है, तथा मुंह में लार बनने के क्रिया का संतुलन करती है । इसमें एंटीस्पासमोडिक (अर्थात् मरोड़ या ऐंठन जैसे रोगों को दूर करने के) तथा स्वापक गुण भी होते हैं । पत्तों का धुआं नाक से लेने से भी दमा में शांति पड़ती है । बीज में भी मुख्यतः 'हिओसिआमीन' ही होता है, और इस कारण बीज भी उन्हीं रोगों पर लाभप्रद हैं ।

अन्य जातियां

धतूरा के वंश की दो अन्य जातियां औषधि में काम आती है ।

काला-धतूरा (डाटूरा मेटेल—*Datura metel* L.) (रंगीन प्लेट IX) यह समस्त भारत में मिलता है, विशेपतः नगरों के आसपास बेकार भूमि में प्रायः ही इसके पौध उग आते हैं । इसके फूल सफेद या हल्के-पीले से और बाहर से प्रायः जामुनी रंग के होते हैं । दलपुंज में 5 कोण होते हैं, फल पर छोटे कांटे होते हैं, इस पौधे का रोपण भी किया जाता है । रोपण किये पौधों के फूल प्रायः ही 'डबल' होते हैं, अर्थात् उनमें दलपुंज के बाहर एक और दलपुंज बन जाता है ।

इसके पत्तों की पुलटिस बांधने से स्तनों की सूजन, जो अधिक दूध बनने से हो जाती है, रुक जाती है । इसके पत्तों और बीज में वह सभी औषधीय गुण हैं, जो 'स्ट्रामोनिउम' में ।

सादा धतूरा (प्लेट 6—डाटूरा ईन्नोक्सिआ—*Datura innoxia* Mill.) यह एक विदेशी पौधा है, जो अब भारत के कई क्षेत्रों में फैल गया है । इसके दलपुंज में 10 कोण होते हैं । (काला-धतूरा की तरह 5 नहीं) । फल पर छोटे व मुलायम कांटे होते हैं । बीज भूरे-कत्थई रंग के होते हैं । इसके पत्तों में वही गुण होते हैं जो 'स्ट्रामोनिउम' में । इस पौधे का रोपण किया जाना चाहिए । भारत में इसकी वार्षिक खपत लगभग 40 क्विटल है ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

30. तिलपुष्पी

(डीजीटालिस)

वैज्ञानिक नाम : डीजीटालिस पुर्पूरेआ (*Digitalis purpurea* L.)

रंगीन प्लेट III तथा मुखपृष्ठ

(कुल—स्कोफ़ुलेरिएसिए)

अन्य नाम : अंग्रेजी—'फॉक्सग्लव' ।

इस पौधे के फूल तिल (सेसामुम ईंडिकुम —*Sesamum indicum* L.) के पौधे के जैसे होते हैं, इसलिए इसे तिलपुष्पी नाम दिया है ।

वर्णन

यह पौधा बहुवर्षीय अथवा दो वर्षीय होता है, और प्रायः 1-2 मी तक ऊंचा हो जाता है । नीचे वाले पत्तों के डंठल बहुत लंबे होते है; यह पत्ते रोमिल अंडाकार, 15-30 सेमी लंबे होते हैं । ऊपर वाले पत्तों में डंठल बहुत छोटा या नहीं ही होता । ऊपर की ओर पत्ते छोटे होते जाते हैं । फूल 5-8 सेमी लंबे, सफेद या बैंजनी रंग के तथा रोमिल होते हैं । वह 30-60 सेमी लंबे गुच्छों में लगते हैं । फल अंडाकार होता है ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा भारत में स्वाभाविक रूप से नहीं होता । उत्तरी भारत में कश्मीर तथा अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती है । पहले दार्जीलिंग एवं नीलगिरी की पहाड़ियों में भी बोया जाता था, किंतु अब वहां खेती समाप्त कर दी गयी है । तिलपुष्पी के पौधे कुछ स्थानों पर खेतों के बाहर भी फैल गये हैं और जंगली रूप से उग आते हैं ।

औषधीय गुण

तिलपुष्पी के पत्ते सुखा कर औषधि में प्रयोग करते हैं । पत्तों को लगभग 60° सेंटीग्रेड पर सुखाना चाहिए; तथा यह कार्य पौधे उखाड़ने के तुरंत ही बाद करना उपयुक्त है ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इस औषधि का मुख्य उपयोग हृदय-रोगों में है। यह हृदय की पेशियों को उत्तेजित करती है और उनकी गति बढ़ाती है। यदि रक्त के संकुलन के कारण हृदय की गति बंद हो जाये, उसमें यह लाभप्रद है। तिलपुष्पी कोरोनरी धमनियों में अधिक रक्त भेजती है और इस कारण हृदय के लिए बलकारक है।

रक्त का संचार शिथिल होने से यदि जलोदर होने लगे तो तिलपुष्पी लाभ करती है और हृदय की गति एवं क्रिया ठीक करने में सहायक होती है।

यह गुर्दे में भी रक्त का प्रवाह ठीक करती है, और इस कारण मूत्रल है, तथा गुर्दे के अवरोध दूर करती है।

तिलपुष्पी के बने मरहम फोड़ों पर तथा जले के जख्मों पर भी लगाए जाते हैं।

इस औषधि का अधिक अथवा निरंतर सेवन कुछ हानिकारक भी है। इससे सिर में दर्द, चक्कर आदि आ सकते हैं; औषधि के सेवन के समय इस बात पर ध्यान रखना आवश्यक है।

अन्य जातियां

तिलपुष्पी के वंश की अन्य जाति डीजीटालिस लानाटा (*Digitalis lanata* Ehrh. अंग्रेजी—'वूली-फॉक्स-ग्लव') कश्मीर में होती है। इसकी खेती भी की जाती है। इसके फूल छोटे, रोमिल तथा गेहुंएं, पीले या बैंजनी रंग के होते हैं। इस पौधे में औषधीय गुण और भी अधिक उग्र होते हैं, साथ ही इसके सेवन से किसी विशेष हानि की संभावना भी कम है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

31. डिओस्कोरिआ

वैज्ञानिक नाम : डिओस्कोरिआ (*Dioscorea*)

(कुल—डिओस्कोरिएसिए) रंगीन प्लेट V

वर्णन

यह कई जातियों वाली कुंडलाकार बूटी है। कुछ जातियों में दायीं ओर होती हैं तथा कुछ में बायीं ओर। पत्तियां सामान्य या संयुक्त होती हैं, अधिकतर रेशे सुस्पष्ट होते हैं। अधिकतर जाति के प्रकंदों की जड़ें कंदील होती हैं तथा कंद गोलाकार या विभिन्न आकृतियों की बनावट के होते हैं जो तने या पत्तियों पर होते हैं।

भारत में इसकी लगभग 50 जातियां पायी जाती हैं; इनकी कई जातियों जैसे—अरबी, रतालू आदि की खेती भी की जाती है।

हाल ही में इसने डायोस्जेनिन आदि स्टेरोइडल सेपोजेनिनों के स्रोत के रूप में काफी ख्याति पायी है। इनसे कार्टिजोन के संश्लेशण के लिए काफी पदार्थ मिलते हैं। कार्टिजोन गठिया के इलाज के लिए तथा योन हारमोनों के निर्माण के लिए काफी उपयोगी होता है।

डिओस्कोरिआ डेल्टोइडिआ (पंजाबी—क्रिस, कित्र; कश्मीरी—किस, किथि, किल्डी) आरोही पौधा है तथा उत्तर पश्चिमी हिमालय व सुदूर मध्य हिमालय क्षेत्रों में पाया जाता है। इसके प्रकंदों में डायोस्जिनिन काफी मात्रा में होता है।

डि प्रेजेरी (अप्रचलित नाम—डि डेल्टोइडिया, डि सिक्किमेसिस) पूर्वी हिमालय, बिहार के उत्तरी भागों, बंगाल, नेपाल, सिक्किम, भूटान तथा असम में पाया जाता है। अब यह भारत के अन्य भागों में भी सफलतापूर्वक उगाया गया है। इसके प्रकंदों में डायोस्जिनिन काफी मात्रा में होता है।

अन्य उपयोग

अरबी भोजन का एक सामान्य अंग है। विशेष रूप से पहाड़ी कबीलों तथा गरीबों के।

डि अल्टाटा (हिंदी तथा बंगाली—खमाल, चुपड़ी, आल; कन्नड़-ओंथाला-इगासू, तंगजेनासु; मलयालम-कावाथु; तामिल-पेरुवल्लोकिझांग्; तेलगू-पेंडालामु) एक बड़ा आरोही पौधा होता है जो खाद्य-प्रकंद होने के कारण उगाया जाता है। डि बल्बिफेरा, डि हिस्पिडा तथा ड. पेंटाफिला भारत में लगभग सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। इनके प्रकंद भी खाये जाते हैं।

डिओस्कोरिआ की कुछ जातियां औद्योगिक स्टार्च भी देती हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

32. इलायची

(कार्डेमोम)

वैज्ञानिक नाम : एलेट्टारिआ कार्डामोमुम
[*Elettaria cardamomum* (L.) Maton] प्लेट 7

(कुल—ज़ींजीबेरेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—छोटी इलायची;
संस्कृत—एला, उपकंचिका;
कन्नड़—येलकी;
तामिल—एलम, येलक्कई;
तेलुगू—एलाकी;
बंगला—छोटो-एलाच;
मराठी—वेलदोडे;
मलयालम—एलम ।

वर्णन

इस पौधे के प्रकंद मोटे, सरस और शाखित होते हैं । इसके तने सीधे होते हैं और कभी-कभी 3 मी० तक ऊंचे हो जाते हैं । पत्ते बहुत बड़े 30-90 सेमी लंबे व संकरे होते हैं । उनमें एक मोटी मध्यशिरा होती है, जिसके दोनों ओर अनेक पंतली पार्श्वशिराएं होती हैं । जिस शाखा पर फूल आते हैं, वह पौधे के आधार के निकट निकलकर भूमि पर ही फैलती है । फूल लगभग 4 सेमी लंबे, सफेद या केलई रंग के होते हैं, और बड़े, 30-90 सेमी लंबे गुच्छे में आते हैं । फल लगभग 1.5 सेमी लंबे, अंडाकार, तिकोने, से हरे पीले या पीले रंग के होते हैं, उनमें तीन कोष्ठक होते हैं । प्रत्येक में कई बीज होते हैं । बीज तिकोने, भूरे या काले रंग के होते हैं । पौधे तथा पत्तों का आकार भिन्न स्थानों पर, तथा पृथक् किस्मों (वरायटी) के अनुसार प्रायः बहुत भिन्न होता है, किंतु सबमें फल और बीज (अर्थात् इलायची और उसके दाने) का आकार प्रायः एक-सा ही रहता है ।

अकसर गंधक के धुएं से इनका रंग उड़ाकर इन्हें बाजार में भी बेचा जाता है ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चित्र 9—छोटी इलायची (इलेट्टारिआ कार्डामोमुम)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्राप्ति-स्थान

छोटी इलायची (चित्र 9) का पौधा दक्षिण भारत में स्वाभाविक रूप से उगता है। यह विशेषकर मैसूर व केरल के पर्वतीय क्षेत्रों के नम वनों में अधिक होता है। भारत के कुछ अन्य भागों में इसकी खेती भी की जाती है।

औषधीय गुण

पौधे के सुखाए हुए फल —अर्थात् इलायची—औषधि में काम आते हैं। वास्तव में तो बीज प्रयोग होते हैं, किंतु बीज निकालकर नहीं रखे जाते। प्रयोग करने के समय ही फल छील कर बीज निकाले जाते हैं।

इलायची मुख्यत: पेट के अफारे को दूर करने के लिए लाभप्रद है। यह पाचक होती है। यह रेचक पदार्थों के साथ भी दी जाती है, तथा खाद्य पदार्थों को (जैसे मिठाई, हलुआ, खीर आदि) सुगंधित करने के लिए प्रयोग होती है। लौंग, अदरक व जीरा के साथ पीसकर खाने से यह अपच दूर करती है।

अन्य उपयोग

इलायची नाना प्रकार से खाद्य-पदार्थों में प्रयोग की जाती है। बीज का तेल अनेक पेय-पदार्थों को सुगंधित करने के काम आता है।

भारत से प्रति वर्ष लगभग 40 करोड़ रुपये मूल्य की इलायची का निर्यात होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

33. बायबिड़ंग

(एंबेलिआ)

वैज्ञानिक नाम : एंबेलिआ त्सजेरिआमकोट्टाम प्लेट 9
(*Embelia tsjeriam-cottam* A. DC.)

(कुल—मीर्सीनेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—गइया, भुंगी;
उड़िया—नूनूनिया;
बंगला—धाड़की-झांटी;
मराठी—वाइवडुंग, अंबाटी ।
(संथाल—भावरी)

वर्णन

बायबिड़ंग का पौधा झाड़ीनुमा या छोटा-सा वृक्ष होता है। नयी शाखाओं पर कत्थई या भूरा रोम होता है। पुरानी शाखाएं अरोमिल हो जाती हैं, शाखाओं पर अनेक छोटी सफेद ग्रंथियां होती हैं। पत्ते लगभग 12 सेमी तक लंबे और आधार एवं शीर्ष पर निशिताग्र होते हैं। पत्तों पर भी अनेक छोटी ग्रंथियां होती हैं। किनारे दंतुर या सीधे होते हैं। पत्ते कभी-कभी नीचे की ओर लाल से रंग के और शिराओं पर रोमिल होते हैं। फूल अत्यंत छोटे, केलई रंग के होते हैं। वह पत्तों के कक्ष में लगे छोटे और अत्यंत रोमिल गुच्छों में होते हैं। फल छोटे, गोल, निशिताग्र तथा पकने पर लाल होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

बायबिड़ंग भारत के पूर्वी एवं प्रायद्वीपी भाग में अधिक होता है।

औषधीय गुण

पौधे के फल सुखा कर औषधि में काम आते हैं।

यह औषधि विशेषकर टेपवर्म नामक कृमियों की चिकित्सा में काम आती है। नियमित मात्रा में औषधि सेवन करने से टेपवर्म मर जाते हैं। किसी रेचक औषधि

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

की सहायता से इन्हें मल के साथ निकाल दिया जाता है। **बायबिड़ंग** स्वयं भी मृदुरेचक है।

हाल में किये गये परीक्षणों से यह पुष्टि हुई है कि **बायबिड़ंग** केवल टेपवर्म पर ही लाभप्रद है; हुकवर्म या राउंडवर्म पर नहीं। यह केंचुओं को भी नष्ट कर देती है; और 'एस्केरियासिस' में भी लाभप्रद होनी चाहिए। इस औषधि में कीटाणुनाशक एवं क्षयरोग-नाशक गुण भी हैं।

अन्य जातियां

बायबिड़ंग के वंश की एक अन्य जाति, जिसे **वाड़ंग** अथवा **वाबेड़ंग** (एंबेलिआ रीबेस *Embelia ribes* Burm. f) कहते हैं, लगभग समस्त भारत में मिलती है। इसको वही स्थानीय नाम दिये जाते हैं जो **बायबिड़ंग** को। इसके फलों के गुण भी वही हैं, इसलिए इस जाति से प्राप्त फलों का भी भारत के मान्य औषध-कोश में उल्लेख है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

34. आंवला

(एंबलिक-माइरोबलान)

वैज्ञानिक नाम : एंबलिका ऑफ्फ़ीसिनालिस (*Emblica officinalis* Gaertn.)
चित्र 10

(अस्वीकृत नाम : फ़ील्लांथुस एंबलिका)

(कुल—एउफ़ोर्बिएसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—आम्लिका;
असमिया—चुकना-आमलकी;
उड़िया—आवड़ा;
कन्नड़—नेल्लिकाई;
गुजराती—आमड़ां, राय-आमलां;
तामिल—नेल्लिक्कई;
बंगला—आमलोकी;
मराठी—आमला;
मलयालम—आमलकम, नेल्ली।

वर्णन

आंवला का वृक्ष छोटा या मझोला व पतझड़ी होता है। इसके पत्ते बहुत छोटे 10-13 मिमी लंबे, 2-3 मिमी चौड़े, बहुत पास-पास लगे होते हैं, इस कारण शाखाएं पंख जैसी दिखती हैं। नर व मादा पुष्प एक ही वृक्ष पर लगते हैं।। फूल केलई रंग के, और प्रायः पत्तों के नीचे की ओर छोटे गुच्छों में लगते हैं। नर पुष्प छोटे, अनेक, तथा छोटे से वृंत पर लगे होते हैं। मादा पुष्प संख्या में कम होते हैं। फल 1.5-2.5 सेमी व्यास के, हरे, सरस व गोल होते हैं; उन पर हल्के रंग की धारियां-सी होती हैं। फल में 6 बीज होते हैं। आंवले के रोपण किए हुए वृक्षों पर अधिक बड़े फल आते हैं।

प्राप्ति-स्थान

आंवले के वृक्ष लगभग समस्त मैदानी और तलहटी प्रदेश में होते हैं। मैंने मध्य-

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रदेश के वनों में आंवले के सहस्रों वृक्ष देखे हैं। इनमें से अधिकांश के फल नष्ट ही होते हैं। वनवासी इन्हें प्रयोग में नहीं लाते।

औषधीय गुण

वृक्ष के ताजे या सुखाए हुए फल ही औषधि में काम आते हैं।

आंवला भारत की प्रसिद्ध औषधि त्रिफला में पड़ने वाले तीन फलों में से एक है (अन्य दो हैं, हर्रा और बहेड़ा)। त्रिफला रेचक होता है, और जिगर बढ़ जाने पर, बवासीर में, नेत्र-रोगों में तथा उदर विकारों में उपयोगी है। आंवले के फल जिगर के लिए पौष्टिक होते हैं। कच्चे फल शीतल और मृदुरेचक होते हैं। फलों से बना सिरका अपच, रक्तक्षीणता, पीलिया, कुछ प्रकार के हृदय-रोग तथा जुकाम में उपयोगी होता है। यह मूत्रल भी है। इसमें विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा में होता है। इस कारण विटामिन 'सी' की कमी से होने वाले रोगों (जैसे स्कर्वी) में आंवला अत्यंत लाभप्रद है।

फेफड़ों के क्षय रोग या तपेदिक के कुछ रोगियों पर जो परीक्षण किये गये हैं, उनसे सिद्ध हुआ है कि आंवले से प्राप्त विटामिन 'सी' कैमिकल से बनाये विटामिन 'सी' की अपेक्षा शरीर में अधिक सुविधा से पच जाता है। इससे प्रतीत होता है कि आंवले में कुछ अन्य उपयोगी, किंतु अज्ञात, तत्व भी हैं।

आंवले के सूखे फल अतिसार एवं पेचिश में उपयोगी हैं। आंवले का मुरब्बा भी औषधि के रूप में प्रयुक्त होता है।

आंवले के फूल, जड़, एवं छाल में भी कुछ औषधीय गुण बताये जाते हैं। इसके बीज दमा एवं उदर के रोगों में लाभप्रद बताये गये हैं।

अन्य उपयोग

आंवले के फल रोशनाई (स्याही), रंग तथा केश धोने के मसाले बनाने के काम आते हैं। फल और टहनियों की छाल में टैनीन होते हैं, यह चमड़ा कमाने व रंगने के काम आते हैं।

आंवले की लकड़ी विविध घरेलू वस्तुएं बनाने के काम आती है। यह पानी में शीघ्र नहीं गलती, इसलिए यह कुएं की चौखट आदि बनाने के काम आती है।

आंवले के पत्ते इलायची के खेतों में खाद के लिए अच्छे समझे जाते हैं; पत्तों की खाद एल्कली भूमि के सुधार के लिए भी उपयोगी है।

1977-78 में लगभग 1.7 लाख रुपये का आंवला निर्यात किया गया।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

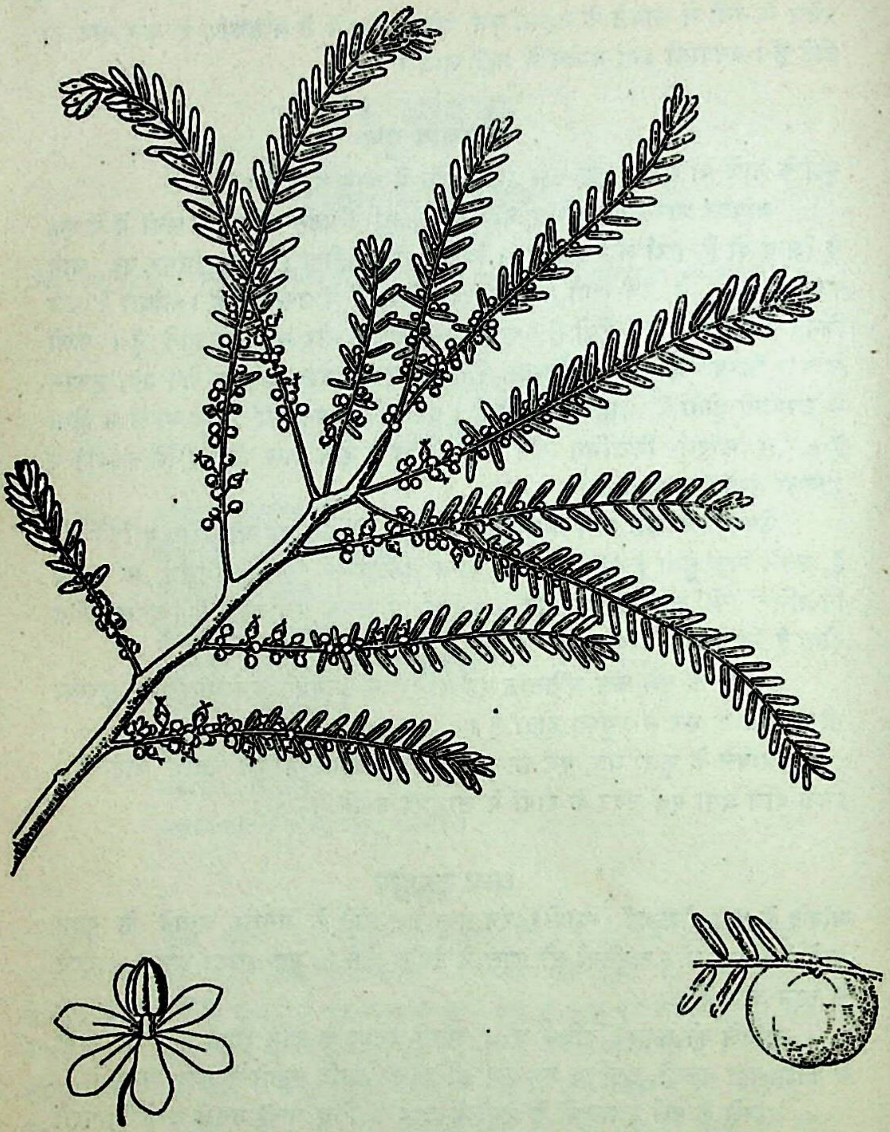

चित्र 10—आंवला (एंबलिका सिनाफ्फिऑफ़्लस)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

35. असमानियां

(एफ़ेड्रा)

वैज्ञानिक नाम : एफ़ेड्रा गेरार्डिआना (*Ephedra gerardiana* Wall.)

प्लेट 8

(कुल—नीटेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—फोक, खंदा;
पंजाबी—बुदशुर;
जौनसार—तूतगांठा।

वर्णन

यह पौधा लगभग 1 मी ऊंचा, झाड़ीनुमा होता है। इसकी शाखाएं कड़ी, मजबूत और अत्यन्त विभाजित होती हैं। शाखाएं चक्करदार होती हैं, अर्थात् एक गांठ पर कई निकलती हैं। वह प्रायः ऊपर की ओर मुड़ी होती हैं। पत्ते छोटे 'शीथ, जैसे होते हैं। नर-पुष्प कई-कई साथ, छोटी अंडाकार स्पाइकों में लगते हैं। मादा पुष्प एक स्पाइक में केवल 1-2 ही होते हैं। फल 7-10 मिमी लम्बा, अंडाकार, लाल रंग का होता है और सरस सहपत्रों में ढका रहता है।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा हिमालय पर्वत की ऊंची, अन्दर की, शुष्क श्रेणियों में, प्रायः 2,00C-4,000 मी ऊंचाई के स्थानों में होता है। इसकी खेती भी की जाती है।

औषधीय गुण

असमानियां की टहनियों को शरद-ऋतु में इकट्ठा करके, सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं।

असमानियां से 'एफेड्रीन' निकलती है। यह दमा (विशेषकर श्वासनली की सूजन के कारण हुआ दमा) में लाभप्रद है। दमा के दौरे को शांत करने के लिए औषधि का सेवन मुख से कराते हैं, अथवा इंजेक्शन भी देते हैं। यही औषधि हृदय के लिए बलकारक व उत्तेजक है। यदि हृदय पर निमोनिया, डिप्थीरिया आदि का प्रभाव हो गया हो, तो यह औषधि हृदय की गति को उन्नत करने के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यह 'हेफ़ीवर' नामक रोग, खुजली तथा एलर्जी से उत्पन्न अन्य रोगों में प्रयुक्त होती है। एफेड्रीन से बनी अनेक औषधियां आजकल काम में आती हैं। ये नाक में छिड़कने की औषधियां दमा, साइनूसाइटिस तथा श्लेष्मा की सूजन पर लाभप्रद होती हैं। एफेड्रीन मूत्राशय के लिए हितकर है और इस कारण जिन बच्चों को रात्रि में बिस्तर में पेशाब करने का रोग हो जाता है, उनको लाभ पहुंचाती है।

इसके अधिक सेवन से मतली, अत्यधिक पसीना और त्वचा रोग हो जाते हैं।

अन्य जातियां

असमानियां के वंश की एक अन्य जाति एफेड्रा माजोर (*Ephedra major* Host) लाहुल में होती है। इसमें असमानियां से भी अधिक एल्केलाइड होते हैं, इस कारण दोनों ही जातियों की शाखाएं मानक औषधि समझी जाती हैं।

औषधि में प्रयोग करने के लिए एफेड्रीन नियमित रूप से मिलती रहे, इसके लिए आवश्यक है कि इन दोनों जातियों की, अथवा दो चीनी जातियों एफेड्रा एक्युईसेटिना---*Ephedra equisetina* Bunge, एवं एफ़ेड्रा सिनिका---*Ephedra sinica* Stapf) की खेती की जाये। चीन वाली दोनों जातियों में एफेड्रीन की मात्रा भारतीय पौधों से अधिक है।

कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश व उत्तर प्रदेश की ऊंची पहाड़ियों के क्षेत्र असमानियां वंश के पौधों की खेती के लिए उपयुक्त बताये जाते हैं।

1977-78 में लगभग 30 लाख रुपये मूल्य के पदार्थों का निर्यात हुआ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

36. लाल-दूधी

(एउफ़ोर्बिआ)

वज्ञानिक नाम : एउफ़ोर्बिया हीर्टा (*Euphorbia hirta* L.)

(अस्वीकृत नाम : अनेक पुस्तकों में इसे एउफ़ोर्बिया पीलूलीफ़रा के अंतर्गत दिया गया है।) चित्र 11, 12, 13

(कुल—एउफ़ोर्बिएसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—नागार्जुनी, पूसितोआ;
कन्नड़—अच्चेगिडा;
गुजराती—दुधेली;
तामिल—अममपच्चे अरिस्सी;
तेलुगू—नानावला;
बंगला—बरकेरु;
मराठी—मोटी-दूधी;
मलयालम—नीलापाले।

वर्णन

यह एक वर्षीय पौधा होता है, यह कभी-कभी सीधा 50 सेमी तक ऊंचा, अथवा कभी आरोही हो जाता है। इसकी शाखाओं पर पीला रोम-सा होता है। पत्ते आमने-सामने जोड़े में, 4 सेमी तक लम्बे, ऊपर गाढ़े-हरे रंग के, नीचे केलई से होते हैं, इनके किनारे दंतुर होते हैं। फूल सफेद, छोटे एवं पत्तों के कक्ष में लगे छोटे, संवृंत गुच्छों में आते हैं। फल 1.2 मिमी व्यास के, रोमिल होते हैं। बीज तिकोने, झुर्रीदार, लाल-भूरे से रंग के होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा भारत के सभी मैदानी क्षेत्रों में तथा उष्ण तलहटियों में होता है। यह बेकार स्थानों में प्रायः ही उग आता है।

औषधीय गुण

जिस समय पौधा फूल व फल में होता है, उस समय समूचा ही उखाड़कर सुखा लिया जाता है, यही औषधि में काम आता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

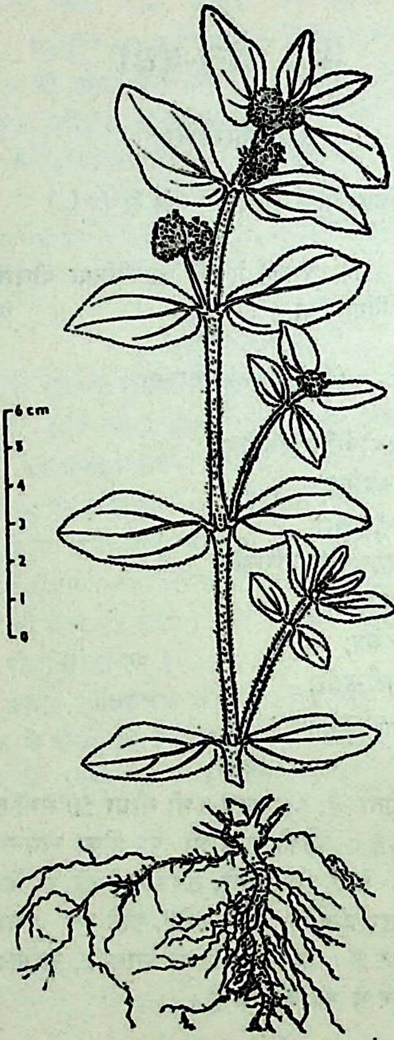

चित्र 11—लाल दूधी (एउफ़ोर्बिआ हीर्टा)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

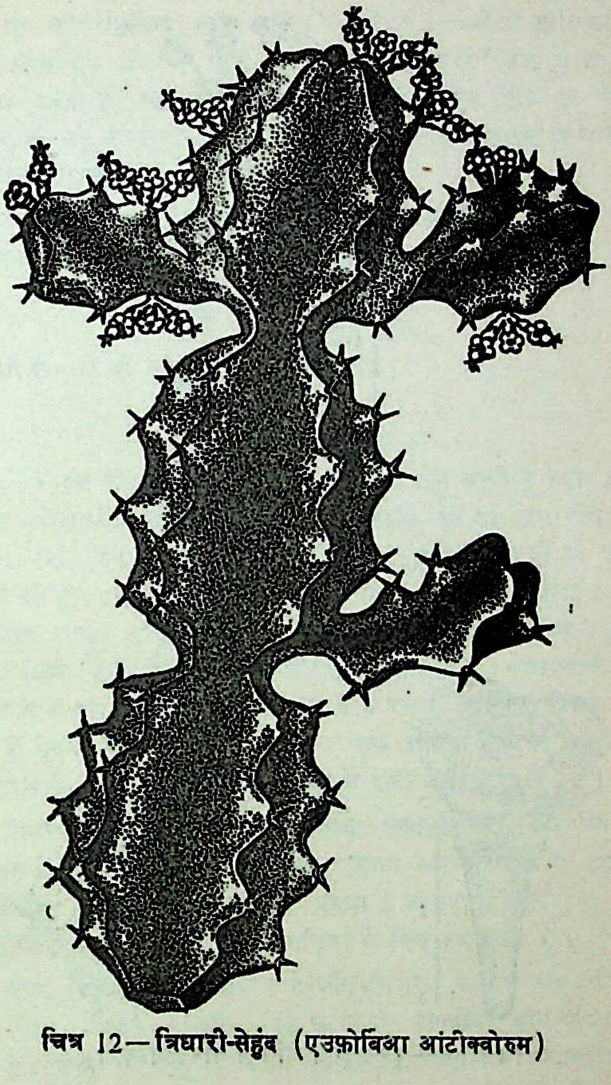

चित्र 12—त्रिधारी-सेहुंड (एउफ़ोर्बिआ आंटीक्वोरुम)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

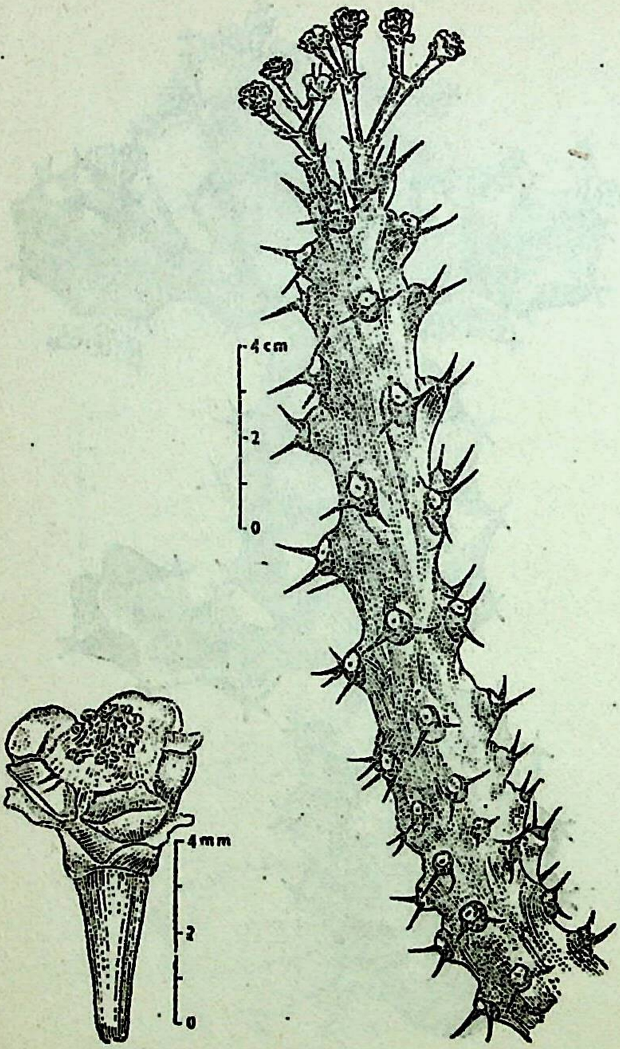

चित्र 13—थूहर (एउफ़ोर्बिआ नेरिईफ़ोलिआ)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

लाल दूधी में हृदय एवं श्वास की क्रिया को मन्द करने का गुण है, यह श्वास नलियों को थोड़ा शिथिल करके आराम पहुंचती है। बच्चों के कृमिरोग में, उदर रोगों में, खांसी एवं दमा में उपयोगी है। इसके सेवन से स्त्रियों के स्तन में दुग्ध की मात्रा बढ़ती है। यह सूजाक तथा जननेंद्रियों के अन्य रोगों पर भी लाभप्रद है। पौधे की जड़ें वमन रोकती हैं। अधिक सेवन से पेट में जलन हो जाती है और मतली व कै हो जाती है।

पौधे का सफेद रस मस्सों पर लगाते हैं। परीक्षणों द्वारा दूधी में एंटीबैक्टीरियल एवं क्षयरोग-नाशक गुणों की पुष्टि हुई है।

अन्य उपयोग

लाल-दूधी के पत्तों की भाजी बना कर खाते हैं।

अन्य जातियां

लाल-दूधी के वंश की अन्य जातियां भी औषधि में काम आती हैं। इस वंश में कुछ बड़े वृक्ष सरीखे पौधे भी होते हैं, जैसे थूहर। इनके तने या स्तंभ गोल, सर्पिल या कोणदार, सरस एवं कांटेदार होते हैं, यह कभी-कभी नागफनी या कैक्टस जैसे दिखायी देते हैं। इन तनों या शाखाओं में गाढ़ा, दूधिया या पीला रस रहता है जो अत्यन्त तीखा, चरपरा और विषैला होता है। केवल सीमित तथा नियमित मात्रा में सेवन करने से इसमें कुछ औषधीय गुण होते हैं। लापरवाही से छूने या सेवन करने से यह रस त्वचा आदि पर तीव्र जलन पैदा कर सकता है। थोड़ी मात्रा में सेवन करने से रेचक होता है। कुछ जातियों का रस पुराने ज़ख्मों के कीड़े मारने के लिए, मस्सों पर तथा त्वचा के रोगों में प्रयुक्त होता है।

त्रिधारी-सेहुंद (चित्र 12 एउफ़ोर्बिआ आंटीक्वोरम—*Euphorbia antiquorum* L.) संस्कृत—वज्रकंटक) : यह लगभग समस्त भारत में उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में होता है। इसके तने 3 अथवा 5 कोणवाले होते हैं। इनका रस जलोदर में प्रयुक्त होता है तथा यह नाड़ियों के लिए बलकारक है।

थूहर (चित्र 13 एउफोर्बिआ नेरिईफ़ोलिआ—*Euphorbia neriifolia* L. हिंदी—सेहुंड़, संस्कृत—स्नूही) : यह भारत के प्रायद्वीपी भाग में प्राकृत रूप से उगता है। किन्तु यह प्रायः ही खेतों की रक्षा के लिए मेंड़ों पर लगाया जाता है, और इस प्रकार सारे देश में ही मिलती है। इसके तने 5 कोण के होते हैं। इसका रस दमा तथा कान दर्द में प्रयुक्त होता है।

काटा-थूहर (एउफ़ोर्बिआ नीवूलिआ)—*Euphorbia nivulia* Buch. Ham. संस्कृत—पत्रस्नूही) : यह लगभग समस्त भारत में—मुख्यतः शुष्क स्थानों में—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

होता है। इसके तने गो होते हैं। यह भी लखेतों की मेंड़ पर लगाया जाता है। इसके रस में मूत्रल गुण बताये जाते हैं। (बस्तर के आदिवासी इसके सफेद रस को पशुओं के फोड़ों पर लगाते हैं)।

डंडा-थोर (एउफ़ोर्बिआ रोयलेआना)—*Euphorbia royleana* Boiss.) यह उत्तर पश्चिम भारत में हिमालय पर्वत के 1,000-1,500 मी० ऊंचाई वाले स्थानों में दक्षिणी शुष्क ढलानों पर होता है। इसके तने व शाखाएं 5 या 7 कोण वाले होते हैं।

सेहुंद (एउफ़ोर्बिआ टीरूकल्ली—*Euphorbia tirucalli* L. संस्कृत—वज्रद्रुमा) : यह एक झाड़ीनुमा पौधा या वृक्ष होता है। इसकी शाखाएं गोल, विभाजित और फैली हुई होती है। वह अन्य जातियों के पौधों से बहुत पतला होती हैं, इन पर कांटे नहीं होते। यह अफ्रीका का देशज है, किन्तु समस्त भारत में, विशेषकर प्रायद्वीपी भाग में तथा पूर्वी प्रांतों में, खेतों के मेड़ों पर तथा सड़कों के किनारे प्राय: ही लगाया जाता है पौधे का सफेद रस गठिया के दर्द, दंत-रोग आदि में प्रयुक्त होता है। अत्यन्त नियमित मात्रा में इसका सेवन भी होता है।

कट्टीमांडू (तेलुगू) (एउफ़ोर्बिआ बार्नहार्टिई—*Euphorbia barnhartii* Croizat, पुराना नाम—एउफ़ोर्बिआ ट्रीगोना) : यह दक्षिण में तथा अंडमानद्वीप में होता है। इसके पत्तों की पुलटिस फोड़ों पर लगाते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

37. हींग

(असाफ़िटिडा)

वैज्ञानिक नाम : फ़ेरुला नार्थेक्स (*Ferula narthex* Boiss.)

(कुल—एपिएसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—वल्हिका, अगूड़गंध;
उड़िया— हेंगू;
कश्मीरी—यंग, सप;
तामिल—पेरुंगायम;
तेलुगू—इंगुमो;
मराठी, बंगला, गुजराती, कन्नड़—हींग;
मलयालम—पेरुंगायम।

व्यापार कार्य में इसे 'असाफिटिडा' कहते हैं क्योंकि हींग के वंश की एक अन्य जाति होती है फ़ेरुला असाफिटिडा, उससे भी हींग निकलता है।

वर्णन

यह एक बड़ा बहुवर्षीय पौधा होता है, इसकी जड़ें मोटी गाजर जैसे होती हैं। इसमें दो प्रकार के पत्ते होते हैं, नीचे के पत्ते 30-60 सेमी लम्बे, अंडाकार होते हैं, ऊपर के पत्ते छोटी पतली पालियों में कटे होते हैं। नये पत्ते घने रोमिल होते हैं। फूल छोटे, पीले तथा शाखाओं के शीर्ष पर लगे गुच्छों में आते हैं। फल 8 मिमी लंबा, लगभग 4 मिमी चौड़ा होता है।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा कश्मीर में मिलता है।

औषधीय गुण

पौधों की ताजी जड़ों या प्रकंदों में चीरा लगाने से एक राल (रेज़िन) जैसा खुशबूदार पदार्थ निकलता है यही हींग होता है, और औषधि में काम आता है।

हींग पेट का मरोड़, अपच, अफारा, ऐंठन, हैजा तथा कुकुरखांसी में अत्यन्त

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

उपयोगी होता है। ये ज्ञान-तंतुओं तथा श्वास नलिकाओं को उत्तेजित करता है बच्चों के निमोनिया तथा खांसी आदि में बहुत लाभप्रद है। पेट पर लेप करने से भी यह अंतड़ियों की क्रिया को उत्तेजित करता है। अंतड़ियों में अधिक अफरा आने पर इसका एनीमा भी बताया है।

परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि हींग में कुछ शमक या अवसादक गुण भी हैं, और हृदय-रोगों में इसके आगे की संभावना बतायी गयी है।

अन्य उपयोग

हींग मसाले के रूप में खाना बनाने में बहुत काम आता है, यह अचार, चटनी आदि में भी डाला जाता है।

अन्य जातियां

फ़ेरुला वंश की कई जातियां—जैसे फ़ेरुला फीटिडा (*Ferula foetida* Regel) तथा फेरुला आसाफीटिडा (*Ferula assafoetida* L.)—मध्य एशियायी देशों (जैसे अफगानिस्तान) में होती हैं। इनसे भी हींग निकलता है।

भारत में हींग की वार्षिक खपत लगभग 6,000 क्विंटल है, और हिमालय की ऊंची उत्तरी श्रेणियों में इसका रोपण करना आवश्यक है। अन्यथा हमें इसके आयत पर निर्भर रहना होगा।

1980 में लगभग 20 लाख रुपये की हींग का निर्यात हुआ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

38. गंधपूर्ण

(विंटरग्रीन)

वैज्ञानिक नाम : गाउल्थेरिया फ्राग्राटीस्सिमा

(*Gaultheria fragrantissima* Wallich.)

(कुल—एरिकेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—गंधपूरा;
संस्कृत—हेमंतहरित;
असमिया—जिरहप ।

वर्णन

यह पौधा सदाहरित, लगभग 3 मी ऊंचा, झाड़ीनुमा होता है । तने शाखित होते हैं, उनकी छाल नारंगी या भूरे रंग की होती है । पत्ते 13 सेमी तक लम्बे, काफी चौड़े, चर्मिल होते हैं, इनके किनारे दंतुर होते हैं । समूचे पत्ते पर ग्रंथियां होती हैं । फूल छोटे, हल्के-हरे रंग के, और पत्तों के कक्ष में लगे छोटे गुच्छों में आते हैं । फल गोल होते हैं, और नीले बाह्यदल से ढके रहते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा उत्तरी, पूर्वी एवं दक्षिणी भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में 1,500-2,000 मी ऊंचाई वाले स्थानों में होता है ।

औषधीय गुण

गंधपूर्ण के ताजे पौधे से एक वाष्पशील (वोलेटाइल) तेल निकलता है, इसे गंधपूर्ण का तेल या गंधपूरा का तेल विंटरग्रीन-आयल) कहते हैं । यही औषधि में काम आता है ।

यह तेल भिन्न प्रकार के वातरोग में उपयोगी है । तेल की मालिश की जाती है । कुछ औषधियों से बने मरहम व तेलों के प्रयोग से त्वचा पर जलन होने लगती है, उनमें गंधपूर्ण का तेल मिलाने से जलन या तो होती ही नहीं, अथवा दूर हो जाती है । इस प्रकार भी गंधपूर्ण अनेक औषधीय तेलों व मरहमों में प्रयोग होता है । इस तेल से हुकवर्म नामक कृमि नष्ट हो जाते हैं । यह पाचक एवं उत्तेजक भी है ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हाल ही के कुछ परीक्षणों से संकेत मिला है कि जिन चूहों को थोड़ी मात्रा में गंधपूर्ण तेल का सेवन कराया गया उनमें कैंसर रोग देर से उत्पन्न किया जा सका, तथा इसके सेवन से (जानवरों में) कुछ प्रकार की गिल्टी या रसौली ठीक हो गयीं।

अन्य उपयोग

गंधपूर्ण का तेल लेमन, सोडा, आदि पेय पदार्थों में, मीठी गोलियों में, दांत के मंजन व पेस्टों आदि में सुगंधि के लिए मिलाया जाता है। मच्छर व अन्य कीड़े मारने या भगाने की अनेक औषधियों में भी यह तेल प्रयुक्त होता है।

इसके पौधे इतने सुन्दर होते हैं कि पहाड़ी स्थानों के उद्यानों में यह प्रायः ही शोभा के लिए लगाये जाते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

39. नीलकंठ

(इंडियन जेंशियन)

वैज्ञानिक नाम : जेंटिआना कुरु (*Gentiana kurroo* Royle.)

(कुल—जेंशिएनेसिए) रंगीन प्लेट VI

अन्य नाम : हिंदी—कुटकी, कमलफूल
कश्मीरी नीलकंठी;
गुजराती—पाखानभेद;
बंगला—करु, कुटकी;
(जौनसार—करु ।)

वर्णन

इस वहुवर्षीय पौधे के तने लगभग 10-30 सेमी ऊंचे होते हैं, कई-कई पौधे इकट्ठे एक समूह में उगते हैं, और उनकी शाखाएं पहले भूमि के समतल बढ़ती हैं, फिर सीधी हो जाती हैं। इसकी जड़ें मोटी होती हैं। नीचे के पत्ते 7-13 सेमी लंबे, ऊपर के 2.5 सेमी तक लंबे व संकरे होते हैं। फूल नीले, 4-5 सेमी लंबे 2-2 5 सेमी व्यास के होते हैं। दलपुंज पर सफेद दाग से होते हैं। फूल अकेले अथवा 2.4 फल इकट्ठे गुच्छे में लगते हैं। फल लगभग 2 सेमी लंबे होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

नीलकंठ के पौधे उत्तर पश्चिमी हिमालय में कश्मीर तथा उसके पास के क्षेत्र में 1,500-3,500 मी ऊंचाई वाले स्थानों में पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

इस पौधे के प्रकंद सुखा कर औषधि में काम आते है।

नीलकंठ की औषधि क्षुधावर्धक है और अंतड़ियों के पाचक तत्वों के लिए उद्दीपक है। यह अनेक पौष्टिक औषधियों में पड़ती है। इसका स्वाद व गंध अच्छी होती है। इसका अधिक मात्रा में सेवन करने से दस्त हो जाते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अन्य जातियां

इस ही वंश की एक विदेशी जाति जेंटिआना लूटेआ (*Gentiana lutea* L. अंग्रेजी—'येलो-जेंशियन') होती है। इसकी जड़ें बहुत उपयोगी होती हैं। उनका बड़ी मात्रा में हमारे देश में आयात होता है। हिमालय के उत्तर-पश्चिमी भाग में लगभग 3,000 मी ऊंचाई वाले स्थानों में इसकी खेती भी की जा सकती है।

हिमालय पर्वत पर नीलकंठ के वंश की एक-दो जातियां और भी पायी जाती हैं। नीलकंठ के स्थान पर वह भी औषधि में प्रयोग की जा सकती हैं।

कुटकी (पीक्रोर्हीजा कुर्रुआ) नामक एक पौधा भी नीलकंठ के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है। ऐसा अनुमान है कि भारत में इस औषधि (नीलकंठ) की वार्षिक खपत लगभग 10 क्विंटल है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

40. मुलेठी

(लिक्वोरिस)

वैज्ञानिक नाम : ग्लीसीरंहीजा ग्लाब्रा (*Glycyrrhiza glabra* L.)

(कुल—फ़ाबेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—मुलहटी, मुलेठी;
संस्कृत—मधुयष्टी;
कन्नड़—अतिमधुरा, यष्ठिमधु;
तामिल—अतिमधुरम;
तेलुगू—यष्टिमधुकम;
बंगला—जष्टिमधु;
मलयालम—इरत्तिमधुरम ।

वर्णन

यह एक बड़ा बूटा या झाड़ीनुमा पौधा होता है जो 1.5 मी तक ऊंचा हो जाता है । इसके पत्ते संयुक्त होते हैं, उनमें 4-7 जोड़े पत्रक होते हैं । फूल गुलाबी या हल्के-जामुनी से रंग के, छोटे, कक्षीय स्पाइकों में लगते हैं । स्पाइक पत्तों जितनी या उनसे लंबी होती हैं । फल 1-3 सेमी लंबे, चपटे होते हैं । समूचे फल पर अनेक छोटे कांटे-से होते हैं । मूल जड़ में से अनेक छोटी जड़ें निकलती हैं । कुछ किस्मों में जड़ के पास अनेक नये स्तंभ निकल आते हैं, वह भूमिगत ही रहते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

भारत में इस पौधे की कृषि की जाती है ।

औषधीय गुण

जड़ों और भूमिगत तनों को सुखा कर औषधि में प्रयोग करते हैं ।

मुलेठी खांसी, गले की खारिश, श्वासनली की सूजन, उदरशूल, क्षयरोग तथा मिरगी के रोग में उपयोगी बतायी जाती है । खांसी आदि में तो मुलेठी का एक टुकड़ा चबाने या चूसने-भर से लाभ होता है ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

मुलेठी मूत्रल होती है। इस गुण की तथा एंटीबायोटिक एवं बैक्टीरिया-नाशक गुणों की परीक्षणों द्वारा पुष्टि हुई है।

मीठे स्वाद तथा शमक गुण के कारण मुलेठी चटनी तथा शरबत बनाने के काम आती है; और अनेक कड़वी औषधियों तथा गोलियों में मुलेठी मिलाकर उनका कड़वापन छुपा दिया जाता है, जिससे बच्चे ऐसी औषधियां सुविधा से ले सकें। यह अंतड़ियों के जख्मों को भी आराम पहुंचाती है।

मुलेठी पीस कर घी और शहद में मिलाकर घाव व फोड़ों पर लगाते हैं। पत्तों की पुलटिस लगाने से सिर के स्काल्ड रोग में लाभ होता है।

अन्य उपयोग

मीठे स्वाद के लिए, पिसी हुई मुलेठी पान में डाल कर खायी जाती है।

कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा मद्रास प्रांत मुलेठी की खेती के लिए उपयुक्त हैं।

वनस्पति सर्वेक्षण विभाग के निदेशक डा. हेरमेनगिल्ड संतापाऊ (जिनका जन्म स्पेन में हुआ था, किंतु अब भारतीय नागरिकता स्वीकार कर ली है) ने बताया कि इटली व स्पेन में चावल के खेतों में मुलेठी के पौधे प्रायः ही उग आते हैं। स्कूल के बच्चे बाजार से टाफी या मीठी गोलियां न खरीद कर मुलेठी की ताजी जड़ का टुकड़ा उखाड़ कर चूसना पसंद करते थे।

यह औषधि भारत में खपत के लिए पर्याप्त पैदा नहीं होती इसलिए 1977-78 के दौरान लगभग तीस लाख रुपये मूल्य की इसकी सूखी जड़ों का आयात किया गया।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

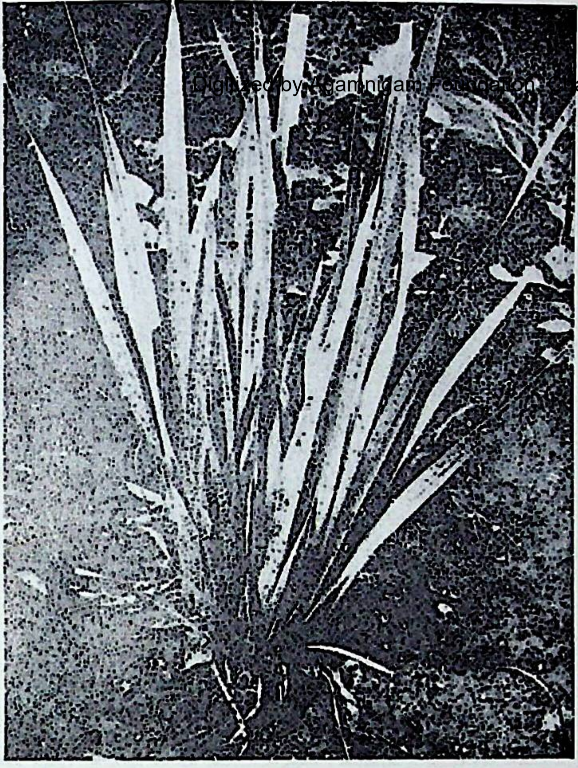

प्लेट-1—वच (कालामुस) (आकोरुस कालामुस) (देखिये पेज 12)

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्लेट 2—अंगूरशफ़ा (वेल्लाडोन्ना) (आट्रोपा आकूमिनाटा) (देखिये पेज 30)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

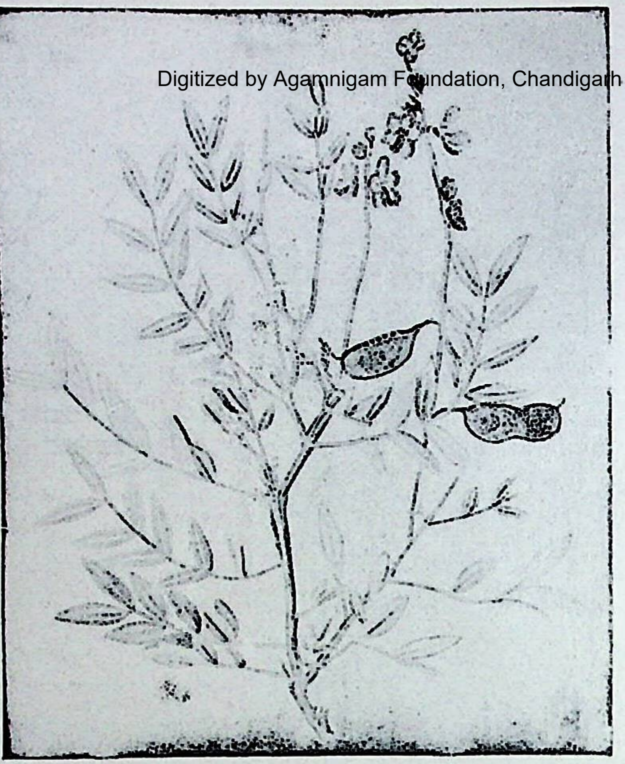

प्लेट-3 —सनाय (कास्सिआ) (कास्सिआ आंगुस्टीफ़ोलिया) (देखिये पेज 47)

प्लेट-4—हिरनतूतिया (कॉलशीकुम) (कॉल्चीकुम लूटेउम) (देखिये पेज50)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्लेट-5—ईपेकाक (सेफाएलिस ईपेकाक आन्हा) (देखिये पेज 54)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्लेट-6—सादा धतूरा (डाटूरा ईन्नोक्सिआ) (देखिये पेज 69)

प्लेट-7—इलायची (कार्डमोम) (एलैट्टारिया कार्डामोमुम) (देखिये पेज 73)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation Chandigarh

प्लेट-8—असमानियां (एफेडा) (ऐफ़ेडा गेरार्डिआना) (देखिये पेज 81)

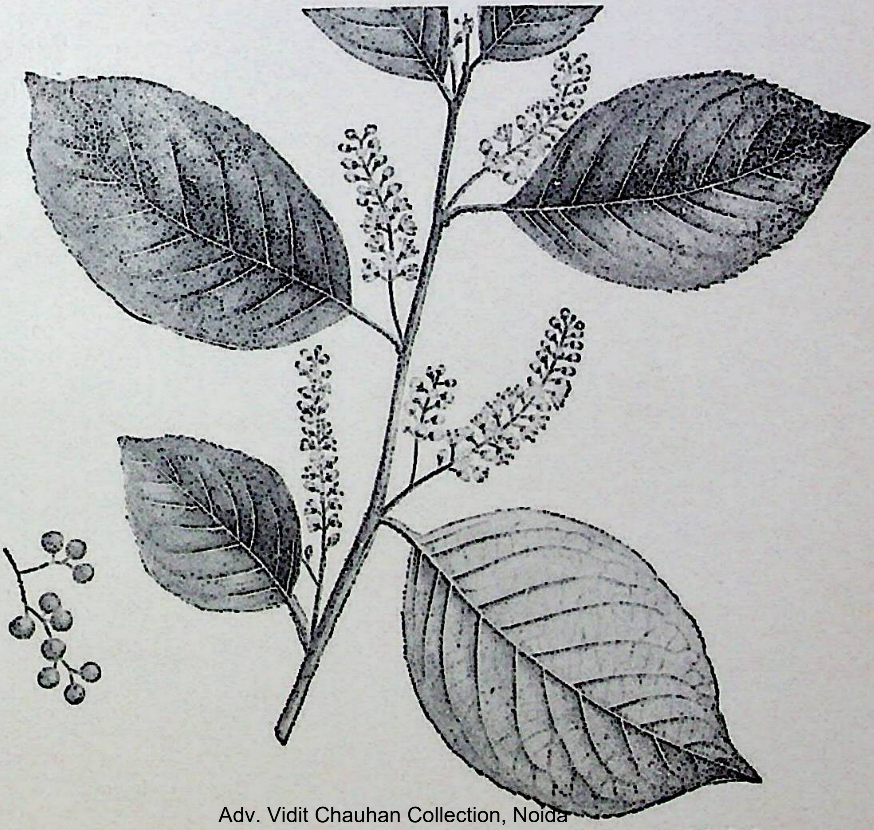

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

प्लेट-9—वायविड़ंग (एंबेलिया) (एंब्रेलिया त्सजेरिआम कोट्टाम) (देखिये पेज 76)

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्लेट 10—अनंतमूल (इंडियन-सारसपारितला) (हेमीडेस्मुस इंडिकुस) (देखिये पेज 97)

प्लेट 11—[illegible] (हीडनोकार्पुस कुर्जिई) (देखिये पेज 101)

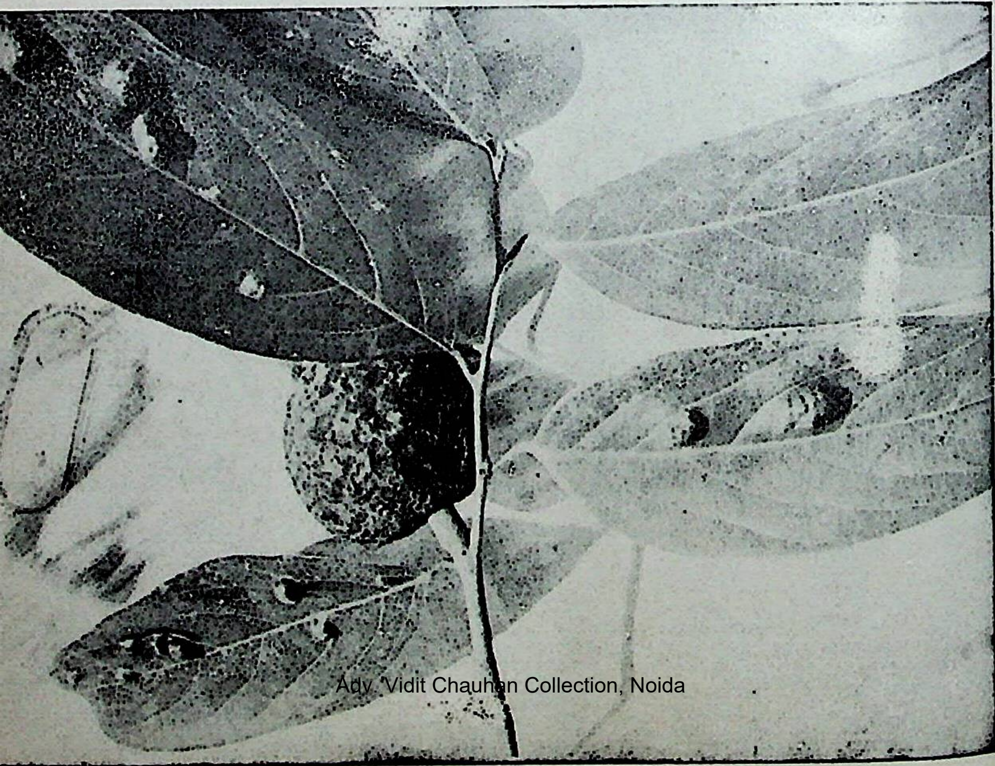

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

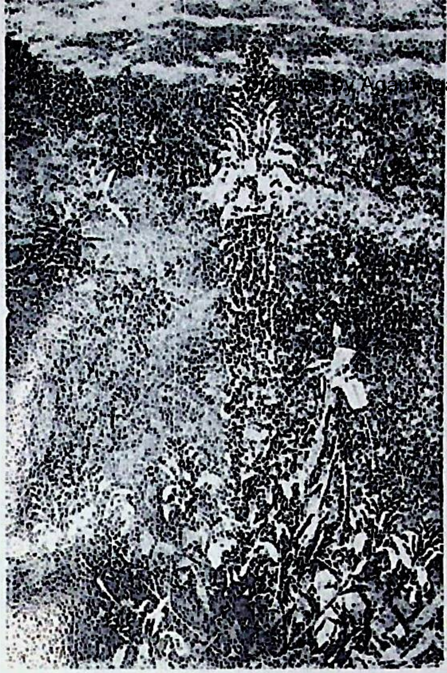

प्लेट-12--नरसल (लोबेलिया) (लोबेलिया नीकोटिनीफोलिआ) (देखिये पेज 115)

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

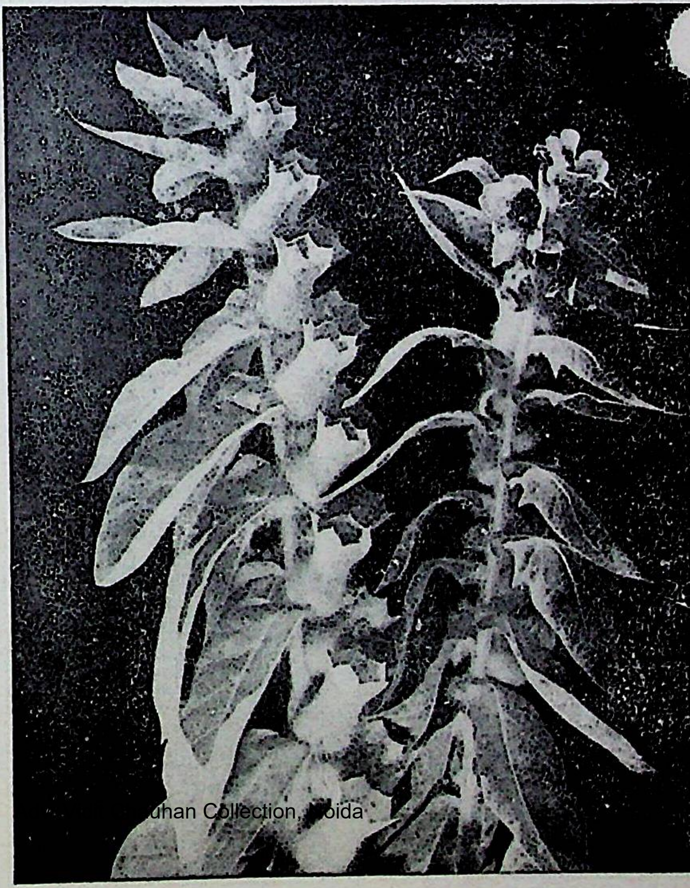

प्लेट-13—खुरासानी-अजवायन (इंडियन-हेनबेन) (हिसोस्सिआमुस नीगेर) (देखिये पेज 105)

uhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्लेट-14—महुआ (माधुका) (माधुक इंडिका) (देखिये पेज 114)
प्लेट-15—कपूर तुलसी (कैंपार वेसिल) (आसीमुक किलिमंडशारीकुम) (देखिये पेज 197)

CC-0. Agamnigam Collection, Chandigarh

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

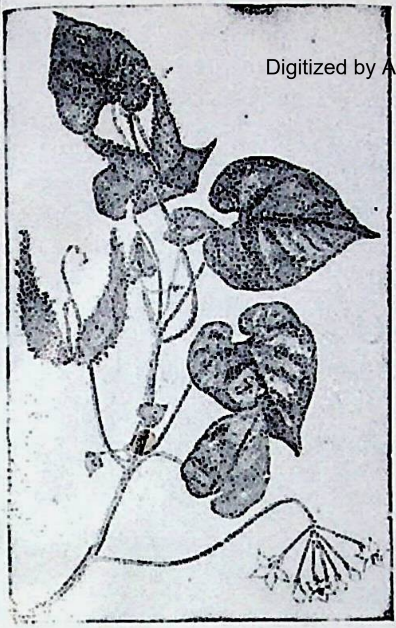

प्लेट-16 — उतरन (पेर्गुलारिया)
(पेर्गुलारिया डेमिआ) (देखिये पेज 133)

प्लेट-17—जटामांसी
(नार्डोस्टाचिस ग्रांडीफ्लोरा)
(देखिये पेज 124)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्लेट-18—हरमल (पेगानुम हारमाला) (देखिये पेज 131)

प्लेट-19
कुटकी (पीक्रोर्हीजा)
(पीक्रोर्हीजा कुर्रोआ)
(देखिये पेज 135)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

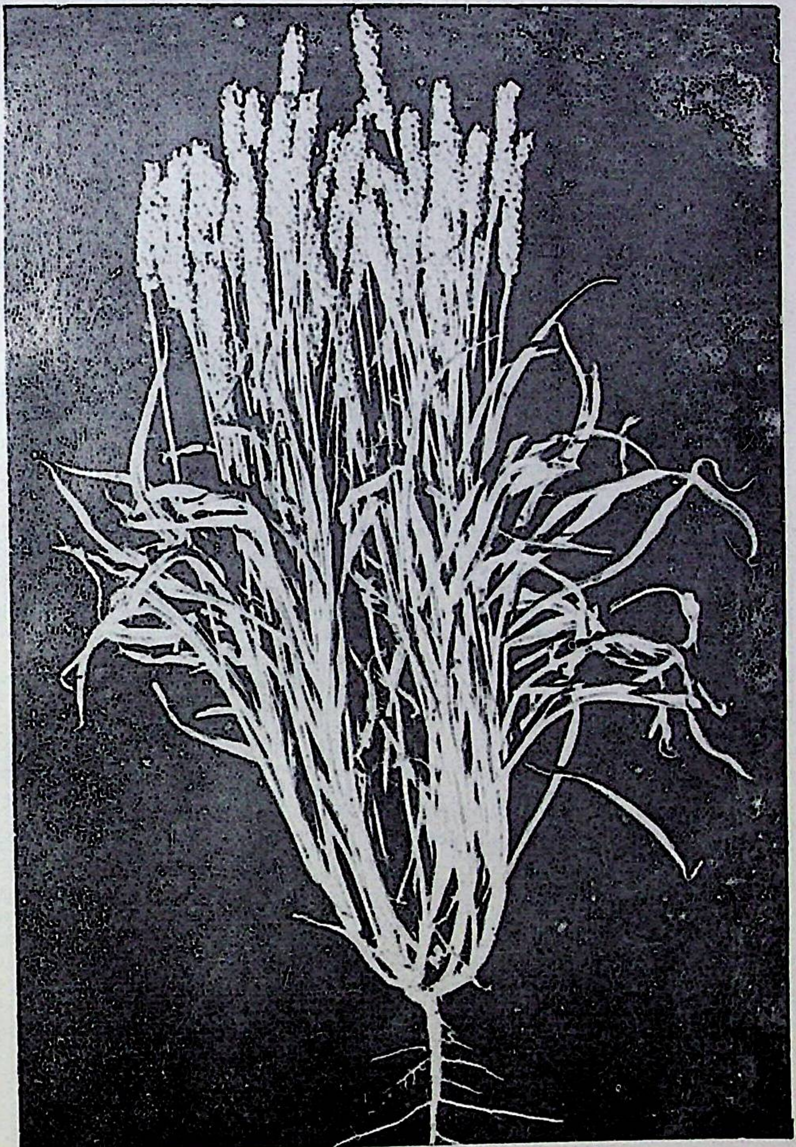

प्लेट-20—इसपगोल (प्लांटागो ओवाटा) (देखिये पेज 141)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्लेट-21—रेवंदचीनी (रहूवर्ब)
(रहेउम एमोडी) (देखिये पेज 152)

प्लेट-22 --कूथ
(साउस्सुरेआ) (साउस्सुरेआ लाप्पा)
(देखिये पेज 160)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्लेट-23 —चंदन (सैंडलवुड) (सांटालुम आल्बुम) (देखिये पेज 156)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्लेट-24—सर्पगंधा (राउवॉल्फ़िआ ठेट्राफील्ला) (देखिये पेज 150)

प्लेट-25—कड़ाया
(स्टेर्कूलिया भरेस)
(देखिये पेज 168)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation, Chandigarh

प्लेट-26 — कटेरी
(सोलानुम विआरूम)
(देखिये पेज 167)

प्लेट-27 — चिरायता (स्वेर्टिआ किराइटा)
(देखिये पेज 170)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation, Chandigarh

प्लेट-28—विल्लीलोटन (वेलीरिआना) (वेलीरिआना वालीचीई) (देखिये पेज 194)

प्लेट-29—[illegible] (टर्मिनालिआ चेबुला) (देखिये पेज 182)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

41. अनंतमूल

(इंडियन-सारसपारिल्ला)

वैज्ञानिक नाम : हेमीडेस्मुस इंडिकुस [*Hemidesmus indicus* (L. Schult)
प्लेट 10

(कुल—पेरीप्लोकेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—हिंदी-सलसा; (अनंतमूल)
संस्कृत - नाग-जिह्वा;
कन्नड़—सोगदेवेरिनगिडा;
गुजराती—धूरीवेल;
तामिल—नन्नारी;
तेलुगू—मुत्तावपुलगमु;
बंगला, उड़िया, मराठी—अनंतमूल;
मलयालम - नन्नारी, कोडुवेलि।
(मध्य-भारत—छोटी-दूधी, काली-दूधी।)

वर्णन

यह एक बहुवर्षीय आरोही या विसर्पी पौधा होता है, इसकी मूल कड़ी एवं सुगंधित होती है। तने मुलायम, अरोमिल होते हैं। पत्तों का आकार बहुत भिन्न-भिन्न होता है, कुछ छोटे व चौड़े, कुछ बड़े संकरे आदि आकार के होते हैं। वह प्रायः 5-10 सेमी लंबे होते हैं; चौड़ाई 0.5-4 सेमी तक होती है। पत्ते हल्के-हरे या पीले-से होते हैं, उन पर सफेद दाग होते हैं। वह नीचे रोमिल होते हैं। फूल अत्यंत छोटे, हरे, छोटे गुच्छों में लगते हैं। दो फल एक साथ लगते हैं, वह 10-15 सेमी लंबे, हरे, संकरे निशिताग्र होते हैं। बीज छोटे, काले होते हैं, उनके शीर्ष पर सफेद रोमगुच्छ होता है। पौधे के सभी भागों से सफेद दूध-सा रस निकलता है।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा समस्त भारत में मिलता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

अनंतमूल की जड़ों को सुखा कर औषधि में प्रयोग करते हैं।

यह औषधि ज्वर, त्वचा रोग, भूख न लगना, आतशक, श्वेत प्रदर, तथा मूत्र-रोगों में लाभदायक है। इसका मूत्रल गुण परीक्षणों द्वारा सिद्ध हुआ है। यह औषधि रक्त को शुद्ध करने के लिए तथा गठिया में बहुत प्रयोग होती है। अस्पतालों में रोगियों पर किये गये परीक्षणों द्वारा इस बात की पुष्टि की गयी है कि अनंतमूल, स्मीलाक्स के पौधों से प्राप्त औषधि के स्थान पर भली-भांति प्रयोग की जा सकती है।

अन्य उपयोग

अनंतमूल की पतली पत्तियों वाली किस्म के ताजे पत्ते चबाने से शरीर में ताजगी आती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

42. इन्द्रजौ

(कुरची)

वैज्ञानिक नाम : होलारहेना आंटीडीसेंटेरिका
[*Holarrhena antidysenterica* (Roth) A.DC]

(कुल—अपोसाइनेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—कोड़ई, कुरची;
संस्कृत—कुटज, कालिंग;
असमिया—दुतखुरी;
उड़िया—खुरनी, खेड़वा;
कन्नड़—हाले, कोडच्चगा;
गुजराती—कुड़ा;
तामिल—इंद्रवन;
तेलुगू—पालाकोडसा;
पंजाबी—केवाड़;
बंगला कुरची;
मराठी—गाल, कोड़या, दुधारी;
मलयालम—कोडगप्पाले।

इस पौधे के वैज्ञानिक नाम में आंटीडीसेंटेरिका शब्द इसके मुख्य औषधीय गुण को संकेत करता है।

वर्णन

यह एक बड़ा झाड़ीनुमा पौधा अथवा छोटा वृक्ष होता है कभी-कभी यह 10 मी तक ऊंचा हो जाता है। इसके पत्ते 10-30 सेमी लंबे, अंडाकार व पतले होते हैं, शिराएं उभरी हुई होती हैं, और स्पष्ट चमकती हैं। पत्तों के डंठल छोटे होते हैं। फूल सफेद, सुगंधित, 1-1.5 सेमी व्यास के होते हैं। यह शाखाओं के शीर्ष पर लगे बड़े गुच्छों में आते हैं। फलियां 20-45 सेमी लंबी, केवल 6-8 मिमी मोटी होती हैं, उनका रंग गहरा भूरा होता है और उन पर सफेद दाने से होते हैं। बीज लगभग 1 सेमी लंबे होते हैं, उनके शीर्ष पर 2-2.5 सेमी लंबा, भूरा रोमगुच्छ होता है। पौधे के किसी भी भाग को काटने पर दूध-सा सफेद रस निकलता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्राप्ति-स्थान

इन्द्रजौ के पौधे 1,200 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग समस्त भारत में मिलते हैं। मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के वनों में प्रायः खुले स्थानों में या ऊंचे वृक्षों के नीचे सहस्रों पौधे देखे गये हैं।

औषधीय गुण

वृक्ष की छाल सुखा कर औषधि में काम आती है। इस औषधि का मुख्य उपयोग एमीबा-पेचिश में है। छाल का क्वाथ बनाकर प्रयोग किया जाता है, अथवा उसमें कुछ अन्य औषधियां मिलाकर सेवन किया जाता है। छाल में पौष्टिक और ज्वर-नाशक गुण भी हैं। छाल में 'कोनेसीन' नामक एक एल्केलाइड होता है, जो क्षय रोग के जीवाणुओं (टूबरकुलर बेसिलाई) की बढ़ोतरी कम कर देता है।

इन्द्रजौ के बीजों में भी कुछ ऐसे एल्केलाइड हैं जो पेचिश में लाभप्रद हैं। पत्तों में कुछ औषधीय गुण बताये जाते हैं।

अन्य उपयोग

अनुपजाऊ भूमि पर उगाने के लिए यह वृक्ष अच्छा है। कटान किए हुए जंगलों में तो यह स्वयं ही उग आता है और प्रायः सर्वप्रथम उग आनेवाले पौधों में से है। इसकी लकड़ी नाना प्रकार की घरेलू वस्तुएं-- जैसे खिलौने, छोटे सन्दूक, डब्बे, कलम, कंघी तथा छपाई के ब्लाक, तस्वीरों के फ्रेम आदि- बनाने के लिए उपयुक्त है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

43. चालमोगरा

वैज्ञानिक नाम : हीड्नोकार्पुस कुर्जिई
[*Hydnocarpus kurzii* (King) Warb.]

(कुल—फ्लेकूर्शिएसिए)

अन्य नाम : हिंदी—चालमोगरा;
असमिया—लमटनी;
बंगला—चौलमूगरा, दालमूगरी;
मलयालम—मरवेट्टी ।

वर्णन

यह वृक्ष प्राय: 10-15 मी ऊंचा होता है, कभी-कभी अधिक भी हो जाता है। इसका मुख्य तना काफी लंबा होता है, शाखाएं प्राय: नीचे की ओर झुकी हुई होती है। पत्ते लगभग 20 सेमी लंबे, निशिताग्र और चर्मिल होते हैं। फल छोटे व पीले होते हैं और कक्षीय गुच्छों में आते हैं। फल 6-7 सेमी व्यास का, छोटी गेंद-सा गोल, भूरे रंग का होता है, इसमें कई बीज होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह वृक्ष असम और त्रिपुरा के सदाहरित वनों में होता है। कुछ स्थानों पर तो यह बहुसंख्या में होता है।

औषधीय गुण

ताजे-पके बीजों का तेल औषधि के काम में आता है।

तेल कुष्ठ-रोग में उपयोगी है। पहले तो तेल का सेवन कराया जाता था, किंतु अब इस तेल की बनी औषधियां इंजेक्शनों द्वारा शरीर में पहुचायी जाती हैं। इस वृक्ष की छाल में टैनीन होते हैं, इस कारण यह छाल ज्वर में लाभप्रद समझी जाती है।

अन्य उपयोग

चालमोगरा की खली खाद के काम आती है। कुछ जानवर इसके फल खा लेते हैं,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

किंतु ऐसे जानवरों का मांस खाना हानिकारक होता हैं। चालमोगरा के फलों के विष से मारी हुई या बेहोश की हुई मछलियां भी नहीं खानी चाहिए; यह हानिकारक हो सकती हैं।

अन्य जातियां

चालमोगरा के वंश की एक अन्य जाति गरुड़फल (प्लेट 11 हीड्नोकार्पुस लाऊरीफ़ोलिया *Hydnocarpus laurifolia* (Dennst.) Sleumer पुराना अस्वीकृत नाम...हीड्नोकार्पुस वाइटियाना; मराठी कटुकवथ; कन्नड़ तोरत्ति; तामिल—मरावेट्टी) पश्चिमी घाट में पायी जाती है। इस वृक्ष के बीज से प्राप्त तेल औषधि में काम आता है। इसमें वही गुण होते हैं जो चालमोगरा के तेल में। यह कुष्ठ रोग में लगाया जाता है, और कोढ़ के नोड्यूल्स को कम कर देता है। तेल गठिया, मोच, सूजन आदि पर भी उपयोगी है। परीक्षणों से इसके बेक्टीरियानाशक गुणों की पुष्टि हुई है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

44. तालमखाना

वैज्ञानिक नाम : हीग्रोफ़िला आउरीकुलाटा
[*Hygrophila auriculata* (Schum.) Heinc]

(अस्वीकृत नाम : हीग्रोफिला स्पीनोसा, आस्टेराकांथा लोंगीफोलिआ)

(कुल — अकांथेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—कुलियाकांटा;
संस्कृत—कोकिलाक्ष;
कन्नड़—कोड़वंके;
गुजराती—एखरो;
तामिल—निर्मुल्ली;
तेलुगू—नीरुगुब्बी;
बंगला—कुलेखाड़ा, कल्पकांटा;
मराठी—तामिलखाना;
मलयालम—वायलचुल्ली।

वर्णन

यह पौधा 60-150 सेमी ऊंचा होता है, इसके तने चौकोर होते हैं। एक पौधे में प्रायः एक सीधा तना होता है, शाखाएं नहीं होती। तना (विशेषकर गांठ के पास) रोमिल होता है। प्रत्येक गांठ पर 6 पत्ते चक्राकार लगते हैं; प्रत्येक पत्ते के कक्ष में एक नोकीला कांटा होता है, जिनके कारण पौधा अत्यंत कंटीला होता है। फूल नीले या बैंजनी रंग के, लगभग 3 सेमी लंबे, द्विओष्ठी होते हैं; प्रत्येक गांठ पर पत्तों के कक्ष में 8 फूल होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

तालमखाना कीचड़ आदि नम स्थानों में सारे भारत में मिलता है। यह प्रायः सड़क के किनारे की सूखी नालियों में, उथले, सूखे तालाबों में और गड्ढों में उग आता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

तालमखाना का मूल-सहित समूचा पौधा औषधि में काम आता है ।

यह जलोदर, पीलिया, गठिया और मूत्र एवं जननेंद्रियों के रोगों में काम आता है । पौधे के बीज सूजाक व आतशक आदि रति संबंधी रोगों में उपयोगी बताये जाते हैं । समस्त पौधे में मूत्रविरेचक गुण हैं । अलग बीज व जड़ में भी यही गुण हैं । तालमखाना के पत्ते खांसी, एवं मूत्र में धातु जाने के रोग में उपयोगी हैं ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

45. खुरासानी-अजवायन

(इंडियन-हेनबेन)

वैज्ञानिक नाम : हिओस्सिआमुस नीगेर (*Hyoscyamus niger* L.)

(कुल—सोलेनेसिए) प्लेट 13

अन्य नाम : संस्कृत—मदकारिणी, पारसीकयः;
गुजराती, बंगला — खुरासानी-अजवायन;
कन्नड़ — खुरासानी-ओम;
मराठी — खुरासानी-ओवा।

वर्णन

यह लगभग 1 मी ऊंचा, एकवर्षी अथवा द्विवर्षी पौधा होता है। समूचे पौधे पर घनका ग्रंथिल रोम होता हैं, और पौधे में दुर्गंध होती है। नीचे के पत्ते 15-20 सेमी लंबे, किनारों पर दंतुर होते हैं। ऊपर के पत्ते छोटे, अनेक पालियों में कटे होते हैं। फूल 2-3 सेमी व्यास के होते हैं, दलपुंज केलई रंग का होता है, किन्तु उस पर बैंजनी धारियाँ-सी होती हैं। कुछ फूल शाखाओं के शीर्ष पर लम्बी स्पाइकों में लगते हैं, कुछ अलग, शाखाएं निकलने के स्थान पर। फल 1.3 सेमी व्यास का, गोल-सा होता है।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा हिमालय के पश्चिमी प्रदेशों में, कश्मीर से गढ़वाल तक, प्रायः 1,500 से 3,000 मी ऊंचाई के स्थानों में मिलता है। यह प्रायः बस्तियों के निकट बेकार स्थानों में उग आता है। कश्मीर, पंजाब, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, नीलगिरी तथा अन्य स्थानों में इसकी खेती भी की गयी है।

औषधीय गुण

पौधे के फूलने के तुरन्त बाद पत्ते और फूलोंवाली ऊपर की शाखाएं इकट्ठी करके सुखा ली जाती हैं। यही खुरासानी-अजवायन नाम से औषधि में प्रयुक्त होते हैं।

इस औषधि में वही गुण हैं जो अंगूरशफा (बेल्लाडोन्ना) में। यह निद्रा लाने

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

के लिए, मांसपेशियों की ऐंठन दूर करने के लिए एवं हिस्टीरिया आदि दौरों में, ज्ञान-तंतुओं की उत्तेजना को शांत करने के लिए लाभप्रद है। यह खांसी को भी शांत करती है, तथा एट्रोपीन की तरह आंख की पुतली को फैला देती है।

पौधे के बीज में भी औषधीय गुण होते हैं। दर्द दूर करने के लिए बीज पीसकर लगाते हैं।

भारत में खुरासानी-अजवायन की वार्षिक खपत का अनुमान लगभग 40 क्विटल है। यह पौधा हिमालय के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में भली-भांति बोया जा सकता है।

अन्य जातियां

इसी वंश की एक जाति 'इजिप्शियन हेनबेन' (हिओस्सिआमुस मूटीकुस)—(*Hyoscyamus muticus* L.) कश्मीर में बोई जाती है। इसमें भारत में होने वाली जाति से अधिक एल्केलाइड होते हैं। इसमें स्वापक (नारकोटिक) गुण भी अधिक है, और नशे के लिए इसके पत्तों का, सुलफा की तरह, धूम्रपान करते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

46. काला-दाना

वैज्ञानिक नाम : ईपोमेआ नील (*Ipomoea nil* (L.) Roth)

(अस्वीकृत नाम : ईपोमेआ हेडेरासेआ)

चित्र 14, 15, 16, 17

(कुल—कनवॉलवुलेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—नील-कलमी;
संस्कृत—कृष्ण-बीज;
उड़िया—कणिखोंडो;
गुजराती—काला-कुंपान, त्रिकोणी-पोटियाल;
तामिल—सिरीखी;
तेलुगू—तीरीकि;
बंगला, गुजराती—काला-दाना;
मराठी—नील-पुप्पी;
(नैनीताल—भोरड।)

इस पौधे के वैज्ञानिक नाम में नील शब्द फूलों के नीले रंग पर आधारित है।

वर्णन

यह एक वर्षी वल्लरी पौधा होता है, इसके तने पर हल्का रोम होता है। पत्ते 5-12 सेमी व्यास के, अंडाकार और 3 पालियों में कटे होते हैं। फूल 4-5 सेमी लम्बे, कीपाकार, नीले रंग के होते हैं। फूल के नीचे का भाग कुछ नारंगी रंग का-सा होता है। कई फूल एक साथ छोटे गुच्छों में लगते हैं। फूल जब तक शाख पर रहते हैं उनका रंग नीला होता है, तोड़ने पर वह शीघ्र ही बैंजनी से रंग के हो जाते हैं। इसलिए बहुत-सी पुस्तकों में भूल से फूलों का रंग बैंजनी लिखा है। फल 8 मीमी व्यास का, गोल या अंडाकार होता है। बीज अत्यन्त छोटे और अरोमिल होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा 1,800 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग समस्त भारत में होता है। यह प्राकृत रूप से भी उगता है और लगाया भी जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

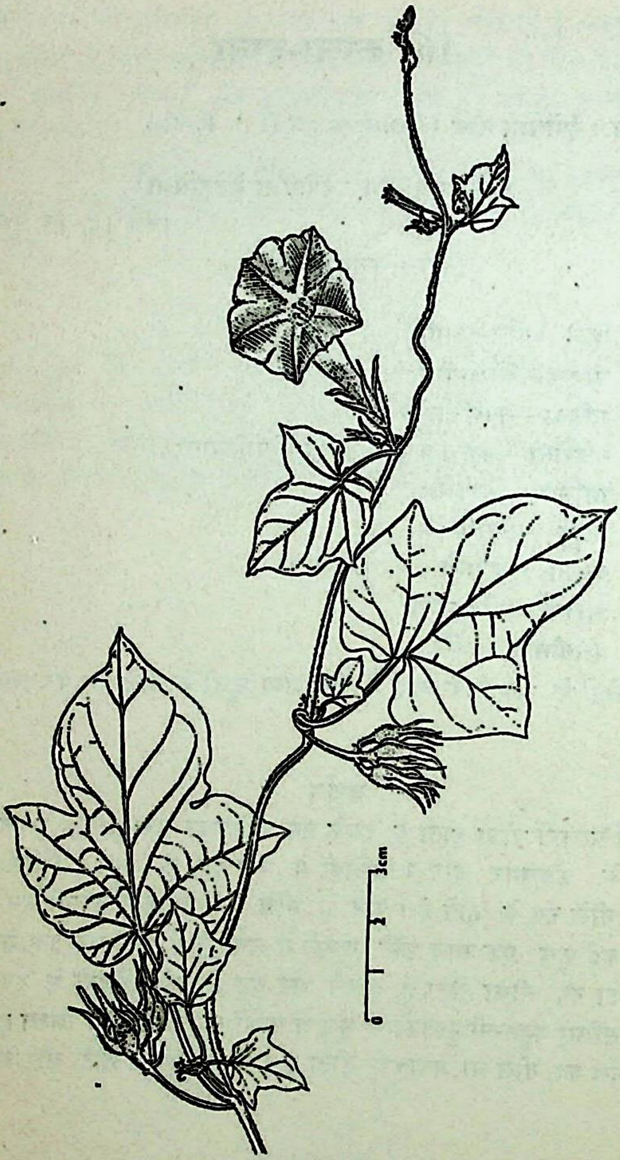

चित्र 14—काला-दाना (ईपोमेआ नील)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

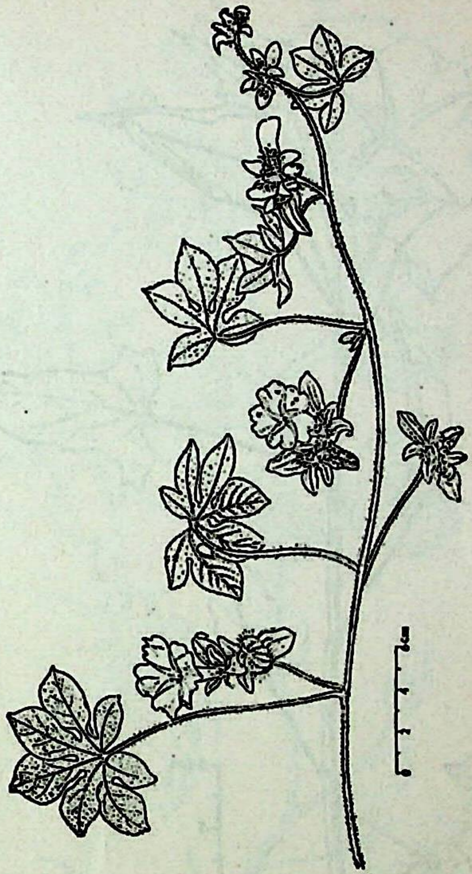

चित्र 15 —पंचपत्री (ईपोमेआ पेसटिग्रिडिस)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

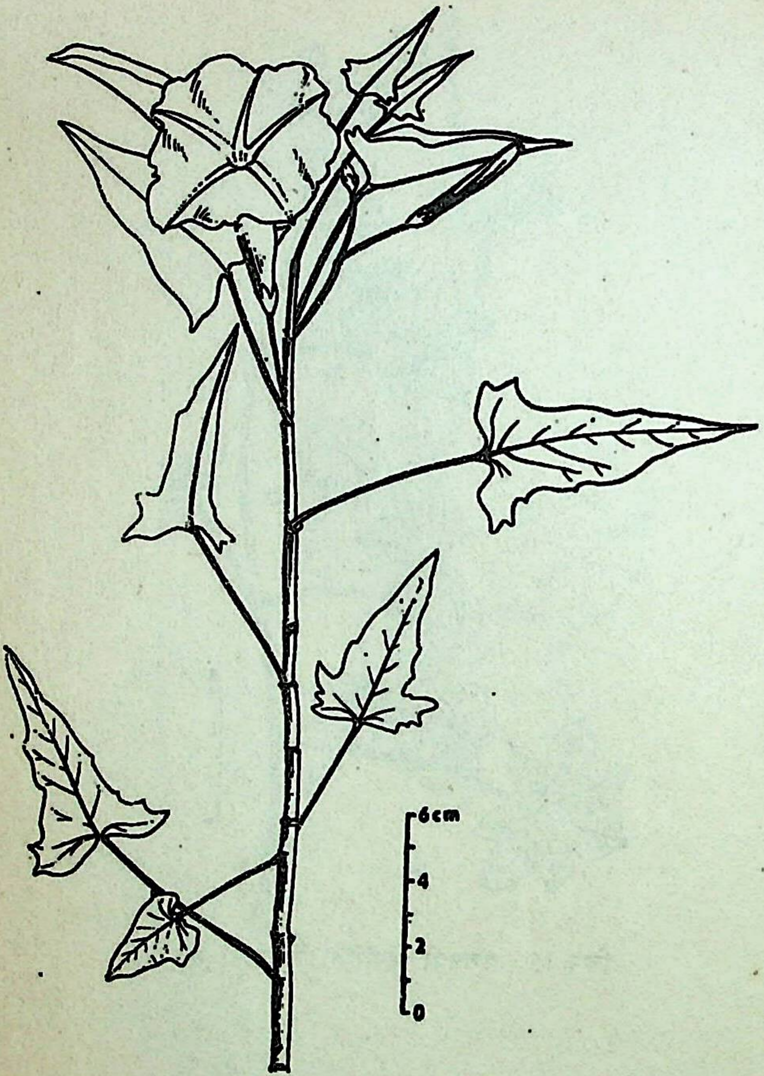

चित्र 16—कलमीशाक (ईपोमेआ आक्वाटिका)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

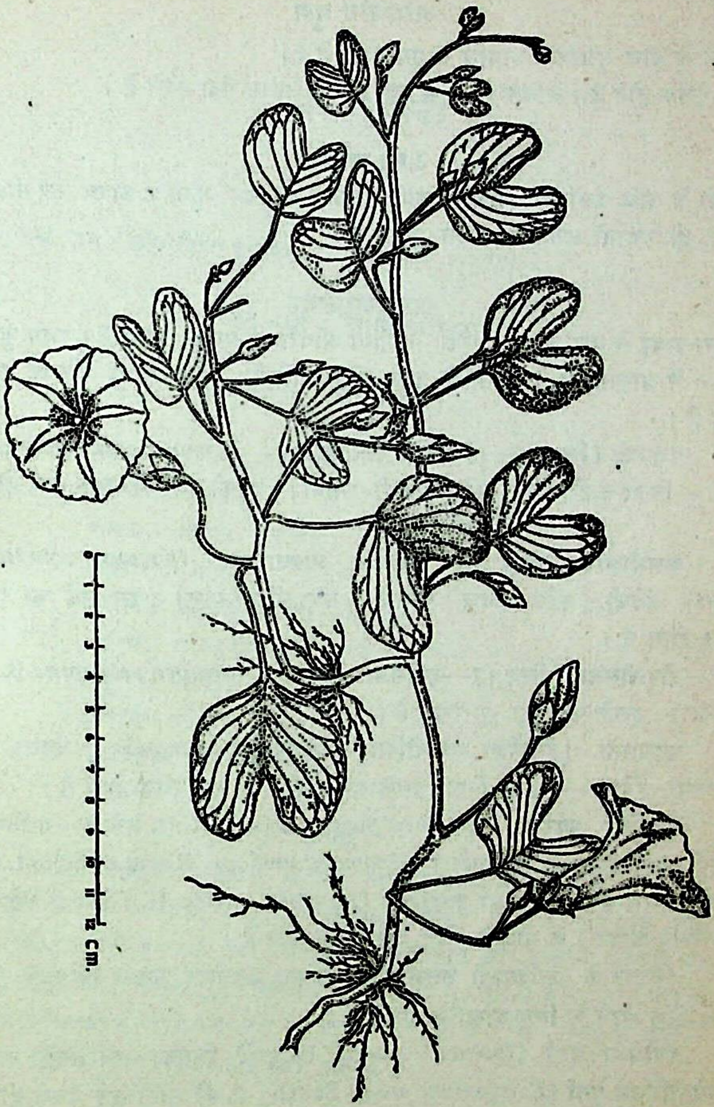

चित्र 17—दोपत्तीलता (ईपोमेआ पेसकाप्रे)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

पौधे के बीज सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं।
यह रेचक होते हैं। अधिक सेवन से यह उदर में जलन पैदा करते हैं।

अन्य उपयोग

पौधों के ताजे फलों की भाजी बनायी जाती है। सुन्दर फूलों के कारण यह पौधा प्रायः ही उद्यानों आदि में लगाया जाता है।

अन्य जातियां

काला-दाना के वंश की अन्य कई जातियां औषधि में प्रयुक्त होती हैं। इनमें कुछ भारत में प्राकृत रूप से उगती हैं, कुछ बोई जाती हैं। निम्न पौधों में रेचक गुण होते हैं।

पंचपत्री (चित्र 15—ईपोमेआ पेसटिग्रिडिस—*Ipomoea pestigridis* L., हिंदी—घिआ-बाटी, मध्य प्रदेश बड़ी-पासवी) : इसकी जड़ों में रेचक तत्व होते हैं।

कलमीशाक (चित्र 16—इपोमेआ आक्वाटिका—*Ipomoea aquatica* Forsk, अंग्रेजी स्वैंप कैबेज, पंजाबी—सोनार्ली-का-साग) : इस पौधे का रस रेचक होता है।

दोपत्तीलता (चित्र 17—इपोमेआ पेसकाप्रे—*Ipomoea pescaprae* (L.) Sweet) : इसके पौधे का रस रेचक है।

कामलता (ईपोमेआ क्वामोक्लिट—*Ipomoea quamoclit* L. बंगला—तोरुलता, अंग्रेजी—इंडियन पिंक) इसके समूचे पौधे का रस रेचक होता है।

ईपोमेआ पूर्पूरेआ (*Ipomoea purpurea* (L.) Roth अंग्रेजी—मार्निंग-ग्लोरी तथा **ईपोमेआ ऊनीफ्लोरा** (*Ipomoea uniflora* Roem et Schult. के पौधे का रस तथा **ईपोमेआ काइरिका** (*Ipomoea cairica* (L.) Sweet अंग्रेजी—'रेलवे क्रीपर') के बीज में रेचक गुण बताए जाते हैं।

(बस्तर के आदिवासी कलमीशाक के फूल मसलकर उनका रस सूजी हुई आंखें ठीक करने के लिए आंखों में डालते हैं।)

ईपोमेआ पुर्गा (*Ipomoea purga* Heyne) जिसका अब सही नाम **एक्सोगोनिउम पुर्गा** (*Exogonium purga* Benth.) है, की मोटी जड़ें रेचक होती हैं। यह पौधा अमेरिका का देशज है। यह भारत में, विशेषकर दक्षिण एवं पूर्वी भागों में, उद्यानों में शोभा के लिए लगाया जाता है। इसकी जड़ों की वार्षिक मांग अभी केवल 6 क्विंटल के लगभग है। इस औषधि के स्थान पर, भारत में होने वाली जातियों से भी भलीभांति काम चल जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

47. मेंहदी

(हेन्ना)

वैज्ञानिक नाम : लॉसोनिआ इनेर्मिस (*Lawsonia inermis L.*)

(अस्वीकृत नाम : (लॉसोनिआ आल्बा)

(कुल लाइथ्रेसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—मेंदिका, रक्तगर्भा;
उड़िया---बेंजाति;
कन्नड़---गोरंटी, मैंलांची;
कश्मीरी मोहुज;
गुजराती, बंगला, मराठी—मेंहदी;
तामिल—मुल्लुगोरांटला मरिथोंडी;
तेलुग्—गोरंटी;
पंजाबी—हिना;
मलयालम—मयीलाची।

वर्णन

मेंहदी का पौधा मझोला या बड़ा, अत्यन्त शाखित झाड़ीनुमा होता है, कभी-कभी छोटे वृक्ष जैसा भी हो जाता है। इसकी शाखाएं चौकोर होती है और प्राय: शीर्ष पर नोकीली होती हैं। पत्ते 2-3 सेमी लम्बे, निशिताग्र और नोकीले होते हैं, वह आमने-सामने जोड़े में लगते हैं। फूल छोटे, सफेद, या गुलाबी-से और सुगंधित होते हैं, और शाखाओं के शीर्ष पर बहुत बड़े गुच्छों में लगते हैं। फल मटर के दाने के बराबर गोल होता है। उसमें कई बीज होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

मेंहदी के पौधे भारत के कई प्रांतों में मिलते हैं। यह प्राय: प्रायद्वीपी भाग के शुष्क क्षेत्रों में अधिक होते हैं। यह बंगलों, उद्यानों आदि की हेज या मेंड़ पर लगाने के लिए बहुत उपयुक्त समझे जाते हैं और इस प्रकार प्राय: ही मेंहदी का रोपण किया

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जाता है। पंजाब, गुजरात, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान आदि में इसकी खेती भी की जाती है।

औषधीय गुण

मेंहदी के पत्तों में औषधीय गुण होते हैं। वह स्तंभक होते हैं और त्वचा रोगों की रोक-थाम के लिए प्रयोग किये जाते हैं। पत्ते पीस कर ज़ख्म, जले के घाव तथा त्वचा रोगों पर लगाये जाते हैं। पत्तों का क्वाथ गले की खारिश (गलदाह) में गरारे करने के काम आता है। सिर-दर्द व पैरों के तलुवों की जलन आदि में पत्तों को पीस कर प्राय: ही लगाते हैं।

मेंहदी के पत्तों का क्षय रोग के तथा कुछ अन्य रोगों के जीवाणुओं पर, मियादी ज्वर में तथा रक्तस्राव में भी कुछ प्रभाव बताते हैं। किन्तु अभी यह इस रूप में प्रयुक्त नहीं हुए हैं।

पौधे की छाल व बीज भी आयुर्वेद एवं यूनानी इलाज में औषधीय बताये हैं।

अन्य उपयोग

मेंहदी का मुख्य उपयोग तो इसके पत्तों से प्राप्त सुन्दर नारंगी रंग का है, जिससे शरीर के भिन्न अंग, दाढ़ी, सिर के बाल, जानवरों की पूंछें आदि रंगी जाती हैं। मेंहदी से प्राप्त रंग अन्य वस्तुओं के साथ मिलाकर कपड़ा रंगने के भी काम आता है।

फूलों से प्राप्त तेल सुगंधित होता है, और इनका इत्र सुगंध के लिए तथा नाना वस्तुओं को सुगंधित करने के लिए प्रयोग होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

48. नरसल

(लोबेलिआ)

वैज्ञानिक नाम : लोबेलिआ नीकोटिनेफोलिआ — प्लेट 12

(*Lobelia nicotinaefolja* Heyne ex Roth)

(कुल—लोबीलिएसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—देवनाल, विभीषण;
कन्नड़—काडुहोगे-सोप्पेले;
गुजराती— नालि;
तामिल, मलयालम—काट्टुपुकैला;
तेलुगु अदारिपोगकू;
बंगला वनतमाकू;
मराठी—देवनाल।

क्योंकि इस पौधे के पत्ते तंबाकू जैसे होते हैं इसके वैज्ञानिक नाम में नीकोटिनेफोलिआ शब्द दिया गया है। तंबाकू का नाम नीकोटिआना टाबाकुम है।

वर्णन

नरसल का पौधा 3-5 मी ऊंचा होता है, इसका तना मोटा, खोखला तथा सीधा अथवा कभी-कभी केवल ऊपरी भाग में शाखित होता है। पत्ते बहुत बड़े होते हैं, नीचे वाले पत्ते 45 सेमी तक लम्बे होते हैं, ऊपर के पत्ते छोटे होते जाते हैं। पत्तों के किनारे सीधे व बीच की नस मोटी एवं सफेद होती है। फूल बड़े और सफेद होते हैं, वह तने के शीर्ष पर लगे बहुत बड़े गुच्छों में आते हैं। फल 8 मिमी व्यास का गोला-सा होता है, उसमें अनेक छोटे पीले या भूरे-से होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

नरसल भारत के प्रायद्वीपी भाग में पहाड़ियों और उनके आसपास के मैदानी क्षेत्र में होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

नरसल के पौधे की जड़ को छोड़कर शेष सब भाग अक्तूबर-नवम्बर मास में एकत्रित कर लिये जाते हैं, और छाया में रखकर सुखा लिये जाते हैं। यही औषधि में काम आते हैं।

इस औषधि में लगभग वही गुण होते हैं जो 'निकोटीन' में। यह दमा व श्वासनली की सूजन में लाभप्रद है। इसके सेवन से पसीना आ जाता है और मतली आकर कै हो जाती हैं, इससे दमे की खांसी में शांति पड़ जाती है। यह औषधि हानिकारक भी हो सकती है। इसके सेवन के बाद यदि कै न हो और औषधि शरीर में ही पच जाये, तो इसके विषैले पदार्थ अत्यन्त हानिकारक हो सकते हैं। अधिक सेवन से मृत्यु भी हो सकती है।

नरसल में 'लोबेलिन' नामक एल्केलाइड होता है, यह श्वास क्रिया को उन्नत करता है। अत्यधिक नशीली वस्तुओं के सेवन से, एनीस्थीसिया से, अथवा अन्य किन्हीं कारणों से श्वास आना बन्द हो जाये या मन्द हो जाये, तो 'लोबेलिन' के सेवन से फिर आरम्भ हो जाता है।

नरसल के तने, शाखाओं व पत्तों से एक सफेद रस निकलता है जिसे त्वचा पर लगाने से फफोले पड़ जाते हैं। कदाचित नरसल के सूखे पौधों से भी श्लेश्म में (नाक और गले में) तीव्र जलन पैदा हो जाती है। वन में पौधे इकट्ठा करते समय प्रायः कुली नरसल के पौधों के पास भी नहीं जाना चाहते (डॉ० संतापाऊ द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर)।

अन्त जातियां

नरसल के वंश की एक अन्य जाति लोबेलिआ इंफ्लाटा (*Lobelia inflata*) अमेरिका की देशज है। इसके पौधे भारत में उगाने का प्रयत्न किया जा रहा है। भारत का प्रायद्वीपी भाग तथा असम इसकी खेती के लिए उपयुक्त स्थान बताए गये हैं। लोबेलिआ (जिससे 'लोबेलिन' निकलती है) का भारत में आयात होता है। भारत में होनेवाली नरसल से प्राप्त लोबेलिन भी संतोषजनक है। भारत में लोबेलिआ की वार्षिक खपत लगभग 50 क्विटल का अनुमान है।

लोबेलिआ वंश की कुछ और जातियां भी भारत में पायी जाती हैं। वह औषधि में उपयोगी नहीं होतीं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

49. महुआ

वैज्ञानिक नाम : माधूका इंडिका (*Madhuca indica* Gmel.)

(अस्वीकृत नाम : बास्सिआ लाटीफोलिआ)

चित्र 18 प्लेट 14

(कुल—सपोटेसिए)

अन्य नाम : हिंदी, बंगाली, मराठी—महुआ;
संस्कृत—मधुका, वनप्रस्थ;
उड़िया—मोहुका;
कन्नड़—इप्पे;
गजराती—महुड़ो;
तामिल—इलुप्पाई;
तेलुगू—इप्पा;
मलयालम—पूनम, मधु;
संथाल—मातकोम ।

वर्णन

महुआ का वृक्ष पतझड़ी होता है । वृक्ष तो काफी बड़ा होता है, किन्तु उसका मुख्य तना छोटा होता है और छत्र तथा शाखाएं बहुत फैले हुए होते हैं । पत्ते 12-25 सेमी लंबे, मोटे चीमड़, निशिताग्र होते हैं । पत्तों की शिराएं मोटी होती हैं । फूल छोटे, गूदेदार पीले या गेहुंए रंग के शाखाओं के शीर्ष के निकट घने गुच्छों में लगते हैं । फूलों के डंठल नीचे की ओर मुड़े रहते हैं, उन पर घनका भूरा रोम होता है । फल 2.5-5 सेमी लंबा, सरस, हरे रंग का होता है : बीज भूरे या कत्थई रंग के, चमकीले, 2.5-3.5 सेमी लंबे होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

महुआ भारत के लगभग सभी मैदानी प्रदेश में, अथवा 1,200 मी. ऊंचाई तक के स्थानों में निचली पहाड़ियों पर होता है । यह प्रायद्वीपी भाग में तथा हिमालय की तलहटियों में बहुत होता है और कुछ स्थानों पर तो वनों में अधिकांश वृक्ष महुआ ही के होते हैं ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चित्र 18—महुआ (माधूका इंडिका)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

महुआ की छाल, पत्ते, फूल व बीज सभी औषधि में काम आते हैं।

छाल का क्वाथ खुजली पर, मसूड़ों से खून आने पर तथा फोड़ों पर लगाया जाता है। मधुमेह रोग में इसका सेवन भी कराते हैं।

पत्ते स्तंभक होते हैं, उनकी भस्म घी में मिलाकर जले के जख्मों पर तथा सिर के 'स्काल्ड' रोग पर लगाते हैं।

फूल खांसी और श्वास नली की सूजन में उपयोगी हैं। वह शीतल और पौष्टिक होते हैं। फूलों से बनायी हुई मदिरा भी पौष्टिक कही जाती है। फूलों में बैक्टीरियानाशक गुण होते हैं। महुआ के बीज स्तनों में दूध का बनना और उसका प्रवाह बढ़ाते हैं। बीज से प्राप्त तेल त्वचा-रोगों पर लगाया जाता है, वह रेचक भी होता है। (प्लेट-14)

अन्य उपयोग

महुआ के फूल कच्चे ही अथवा पकाकर खाये जाते हैं, किंतु उनका अधिक सेवन हानिकारक है। फूलों से मदिरा, एल्कोहल, सिरका, शबरत, जैम आदि बनाये जाते हैं।

महुआ का तेल साबुन बनाने व खाना पकाने के काम आता है। खली, खाद में काम आती है, यह कभी-कभी पशुओं को भी खिलायी जाती है। केंचुओं के बचाने के लिए इसका लेपन टेनिस के कोर्टों में भी किया जाता है। महुआ की लकड़ी नाना प्रकार से उपयोगी है।

अन्य जातियां

महुआ के वंश की एक अन्य जाति **माधूका लोंगीफ़ोलिआ** (*Madhuca longifolia* Koenig) McBr., जिसका पुराना नाम **बास्सिआ लोंगीफ़ोलिआ** था) उन्हीं देशी नामों से पुकारी जाती है जिनसे महुआ। यह वृक्ष भारतीय प्रायद्वीप में होता है। इसके भिन्न भाग उस ही प्रकार काम आते हैं जैसे महुआ के। इस कारण भारत के मानक औषध-कोष में दोनों ही जातियों का उल्लेख है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

50. कामेला

वैज्ञानिक नाम : माल्लोटुस फ़िलीप्पेंसिस
(*Mallotus philippensis* Muell. — Arg.)

(कुल—एउफोर्बिएसिए)

अन्य नाम : हिंदी—सेंदूरी, रोहिनी;
संस्कृत—शेंदूरी;
असमिया—गंगई;
उड़िया—कमलगुंडी;
कन्नड़—कुंकुममरा, रोणती, केसलई;
गुजराती—कपीला;
तामिल—कोपिलपोड़ि;
तेलुगू—कुँकुमः,
बंगला—कमलागुंडि, रैनी;
मराठी—कपीला, शेंदरी;
मलयालम—कपीला, कुंकुम।
(बिहार—गसर्ब; तिन्नेवली कलुपत्ती।)

वर्णन

कामेला का वृक्ष छोटे आकार का या मझोला और सदाहरित होता है। कभी-कभी यह अत्यंत शाखित झाड़ीनुमा ही रह जाता है। नयी शाखाओं व नये पत्तों पर लाल रंग का सूक्ष्म रोम-सा होता है। पत्ते एकांतर, लंबे डंठलों पर, 7-20 सेमी लंबे तथा भिन्न-भिन्न आकृति के होते हैं। उनकी नीचे की सतह पर सूक्ष्म, लाल ग्रंथियां होती हैं, और मोटी-मोटी शिराएं चमकती हैं। फूल छोटे, तथा नर व मादा पृथक-पृथक वृक्षों पर लगते हैं। मादा फूल 5-8 सेमी लंबी, सीधी, ऊर्ध्व स्पाइकों में आते हैं। नर फूल पीले रंग के, और 8-15 सेमी लंबी, नीचे को लटकती हुई, स्पाइकों में लगते हैं। फल 8-13 मिमी व्यास के, गोल से किंतु त्रिपालिक होते हैं। फलों पर सूक्ष्म कत्थई या लाल घनका रोम तथा पाउडर-सा लगा रहता है। फलों को हल्के से मलने से ही वह पाउडर अलग हो जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्राप्ति-स्थान

कामेला के वृक्ष हिमालय में 1,500 मी ऊंचाई वाले स्थानों से लेकर दक्षिण में केरल तक, भारत के सभी उष्ण क्षेत्रों में, पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

फलों पर लगा हुआ लाल रोम अथवा पाउडर अलग कर लिया जाता है, यही औषधि में काम आता है।

कामेला मुख्यतः टेपवर्म कृमि दूर करने के काम आता है। कामेला-पाउडर का सेवन दूध या दही के साथ किया जाता है। यदि एक खुराक से कीड़ा मर-कर नहीं निकल जाता, तो दूसरी खुराक दी जाती है। कभी-कभी अरंडी के तेल (कैस्टर-आयल) की सहायता से कीड़े को मल के साथ निकाला जाता है। स्वयं कामेला में भी रेचक गुण हैं। कामेला दाद, खुजली आदि त्वचा-रोगों पर भी लगाया जाता है।

कामेला के गर्भनिरोधी गुण जांचने के लिए जानवरों पर कुछ परीक्षण किये गये। कामेला के फलों पर लगा रोम मुख द्वारा सेवन कराया गया। ऐसे मादा चूहों और गिनीपिग में प्रजननक्षमता कम अवश्य देखी गयी।

अन्य उपयोग

प्रख्यात कामेला रंग, जो कपड़े एव सूत रंगने के काम आता है, इसी वृक्ष से प्राप्त होता है। कामेला के बीज का तेल रंग रोगन व वार्निश बनाने के लिए उत्तम समझा जाता है, क्योंकि यह तेल बहुत शीघ्र सूख जाता है। चित्रकला (पेंटिंग) के लिए भी यह अत्यंत उपयुक्त है, और इसकी बहुत मांग है।

वृक्ष की लकड़ी नाना प्रकार की घरेलू वस्तुएं बनाने के काम आती है, यह दियासलाई बनाने के लिए भी उपयोगी है। पत्ते पशुओं के लिए उपयुक्त चारा हैं। खली खाद के काम आती है। वृक्ष की छाल में टैनीन होते हैं, और यह चमड़ा कमाने के काम आती है। स्त्रियां लाल पाउडर का सिंदूर लगाती हैं। इस वृक्ष को कई भाषाओं में 'सेंदूर' नाम से ही जानते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

51. पोदीना

(मिंट)

मेंथा (*Mentha*)

(कुल—लैमिएसिए)

पोदीना वंश की लगभग सभी उपयोगी जातियों को भारत के पोदीना नाम से ही जानते हैं। इस वंश के पौधे छोटे एवं गंधमय होते हैं। कई जातियां स्वाभाविक रूप से उगती हैं, कुछ की खेती भी की जाती है, इनमें मुख्य उपयोगी तत्व 'मेंथोल' और 'पेपरमिंट-आयल' होते हैं।

पोदीना (मेंथा आरवेंसिस *Mentha arvensis* L., अंग्रेजी—'फील्ड-मिंट', 'कार्नमिंट'): यह एक ऊर्ध्व, शाखित, 60 सेमी तक ऊंचा पौधा होता है। पत्ते 5 सेमी तक लंबे होते हैं। उनके किनारे दंतुर तथा डंठल छोटे होते हैं। कभी-कभी पत्ते अवृंत होते हैं। फूल छोटे, गुलाबी, और छोटे गुच्छों में पत्तों के कक्ष में आते हैं। यह जाति कश्मीर में 1,500-3,000 मी ऊंचाई तक के स्थानों में होती है, इसकी खेती भी की जाती है।

इसके पत्तों का क्वाथ गठिया के दर्द एवं अपच में लाभप्रद है।

इस जाति की एक जापानी प्रजाति **मेंथा आरवेंसिस उपजाति हाप्लोकैलिक्स प्रजाति पिपारेसेंस** (*Mentha arvensis* L. subspecies *haplocalyx* Brig. variety *piperascens* Holmes) की जम्मू एवं कश्मीर में खेती की गयी है। इससे प्राप्त तेल को 'जापानी-पेपरमिंट-आयल' कहते हैं। यह **मेंथा पीपेरिटा** (*Mentha piperita* L.) से प्राप्त असली पेपरमिंट-आयल के स्थान पर प्रयोग हो सकता है।

जंगली पोदीना (मेंथा लोंगीफोलिआ *Mentha longifolia* (L.) Huds. इसका पुराना नाम मेंथा सील्वेस्ट्रिस-*Mentha sylvestris* L. था, अंग्रेजी-'हार्स-मिंट', पंजाबी—कोशू): इसका पौधा अधिक बड़ा होता है, और कश्मीर, पंजाब तथा उत्तर-प्रदेश में पाया जाता है। इस पौधे में एंटीसेप्टिक तथा उत्तेजक गुण होते हैं, यह अपच और ज्वर में उपयोगी है।

असली पेपरमिंट

मेंथा वंश का सबसे उपयोगी पौधा विलायती-पोदीना (मेंथा पीरिटापे

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Mentha piperita L. अंग्रेजी—'पेपरमिंट') है। इसकी कश्मीर, उत्तर-प्रदेश, मैसूर, मद्रास आदि भारत के कई प्रांतों में खेती की जाती है।

इस पौधे के पत्तों और फूलवाली ऊपरी शाखाओं को सुखा कर औषधि में प्रयोग करते हैं, इसे पेपरमिंट कहते हैं। यह औषधि अफारा, कै, अतिसार और मतली में लाभप्रद है। सिर तथा अन्य अंगों के दर्द पर इसके पत्ते मसल कर लगाते हैं।

इस औषधि का मुख्य उपयोग तो इससे प्राप्त तेल—'पेपरमिंट आयल' (जिसमें मेंथोल होता है)—के कारण है। यह तेल अपच की औषधियां में, सिर दर्द व गठिया आदि के मरहमों में, खांसी की गोलियों में, जुकाम की सूंघनी में, तथा कुल्ला या गरारा करने की औषधियों में प्रयुक्त होता है। यह तेल एंटीसेप्टिक भी है।

1976-77 में 30 लाख रुपये से अधिक का पेपरमिंट आयल आयात किया गया। इस आयात को बंद करने के लिए भारत में मेंथा वंश की उन सभी जातियों की खेती बढ़ानी होगी जिनसे मेंथोल व पेपरमिंट प्राप्त हो सके।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

52. जटामांसी

वैज्ञानिक नाम : नार्डोस्टाचिस ग्रांडीफ्लोरा
(*Nardostachys grandiflora* D.C.)

(कुल—वेलीरिएनेसिए) प्लेट 17

अन्य नाम : हिंदी—जटामांसी;
संस्कृत, तामिल, तेलुगू—जटामांसी;
कश्मीरी—भूतजट;
बंगला, गुजराती—जटामांसी;
अंग्रेजी—'स्पाइकनार्ड' ।

इस पौधे के प्रकंदों पर दाढ़ी जैसे लंबे रेशे होते हैं, इस कारण इसे भारतीय भाषाओं में जटामांसी कहते हैं : वैज्ञानिक नाम में भी यही शब्द अपना लिया गया है ।

वर्णन

यह पौधा बहुवर्षी, लगभग 60 सेमी तक ऊंचा हो जाता है । इसके प्रकंद कड़े व लंबे होते हैं, उन पर पुराने पत्तों के डंठलों के रेशे लगे रह जाते हैं, जो दाढ़ी जैसे दिखते हैं । नीचे के पत्ते 20 सेमी तक लंबे होते हैं, यह आधार पर संकरे होते हैं । ऊपर के पत्ते छोटे अंडाकार-से होते हैं । फूल छोट होते हैं; कई-कई फूल छोटे गुच्छों में होते हैं । फल छोटे, रोमिल होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा हिमालय की 3,000-4,500 मी ऊंची श्रेणियों में कश्मीर से भूटान तक मिलता है ।

औषधीय गुण

जटामांसी के प्रकंद एव जड़ें सुखा कर औषधि में प्रयोग करते हैं ।

जटामांसी पौष्टिक, उत्तेजक तथा मरोड़ व ऐंठन दूर करने वाली है । यह कुछ प्रकार के दौरे या आक्षेप (कनवलजन) और हृदय की धड़कन जैसे रोगों में

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

उपयोगी है। यह रेचक, मूत्रल तथा पाचक है, और रजोधर्म को भी ठीक करती है।

जटामांसी, बिल्लीलोटन (वालेरिआना) नामक औषधि के स्थान पर भी प्रयोग की जा सकती है।

भारत में प्रति वर्ष लगभग 20 क्विंटल जटामांसी की खपत है। हिमालय की ऊंची श्रेणियों में इसकी खेती की जा सकती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

53. तुलसी

वैज्ञानिक नाम : ऑसीमुम सांक्टुम (*Ocimum sanctum* L.)

(कुल—लैमिएसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—मंजरी, कृष्ण-तुलसी;
कन्नड़—विष्णु-तुलसी;
तामिल, तेलुगू, बंगला, गुजराती, मराठी—तुलसी;
मलयालम—त्रित्ताव;
अंग्रेजी—'सेक्रेड-वेसिल', 'होली-वेसिल' ।

वर्णन

तुलसी भारत का सुपरिचित पौधा है, अनेक घरों में तो इसे पूज्य समझा जाता है। यह ऊर्ध्व, अत्यंत शाखित, लगभग 60-75 सेमी ऊंचा, अत्यंत रोमिल पौधा होता है। पत्ते आमने-सामने जोड़े में, लगभग 5 सेमी लंबे, किनारों पर सीधे या दंतुर, ऊपर तथा नीचे दोनों ओर रोमिल होते हैं, उन पर छोटी ग्रंथियां होती हैं। फूल छोटे, सुगंधित, गुलाबी या हल्के नीले रंग के, छोटी स्पाइकों में लगते हैं। फल छोटे होते हैं, बीज पीले या लाल-से रंग के होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

तुलसी का पौधा प्रायः ही घरों, उद्यानों एव मंदिरों में लगाया जाता है। कई स्थानों में अब यह जंगली तौर पर भी फैल गया है।

औषधीय गुण

तुलसी के पत्ते तथा बीज औषधि में काम आते हैं।

पत्तों से प्राप्त तेल बैक्टीरियानाशक होता है तथा कुछ प्रकार के कीड़ों को भी नष्ट करता है। पत्तों का रस या क्वाथ श्वास नली की सूजन, जुकाम व अपच में उपयोगी होता है। यह दाद, खुजली व अन्य त्वचा-रोगों पर लगाया भी जाता है। कान का दर्द दूर करने के लिए पत्तों के रस की बूंदें कान में डालते भी हैं।

तुलसी के पत्तों की 'चाय' बना कर जुकाम में प्रायः ही दी जाती है, यह एक घरेलू नुस्खा है। बीज मूत्र रोगों में लाभप्रद हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जड़ का क्वाथ पीने से पसीना आ जाता है, इसलिए इसे मलेरिया ज्वर में देते हैं।

अन्य उपयोग

अनेक भारतीय घरों में इस पौधे की पूजा की जाती है। हिंदू देवी-देवताओं की पूजा-सामग्री में प्रायः तुलसी अवश्य ही होती है। मध्य-प्रदेश के सुदूर वनों में रहने वाले कुछ आदिवासियों के घरों में भी पूजा के लिए लगाये हुए तुलसी के पौधे देखे गये।

अन्य जातियां

काली-तुलसी (आँसीमुम कानुम-*Ocimum canum* Sims. अंग्रेजी—होअरी-वेसिल, हिंदी-रामतुलसी, भरभरी) : यह पौधा समस्त भारत में, विशेषकर वस्तिओं के आसपास खेतों और वेकार स्थानों में उगता है। इसके बीज काले होते हैं, बीज पौष्टिक और मूत्रविरेचक होते हैं। इसके पत्तों के तेल में भी वही गुण होते हैं, जो तुलसी से प्राप्त तेल में।

बबुई-तुलसी (आँसीमुम वासीलिकुम-*Ocimum basilicum* L. अंग्रेजी… स्वीट-वेसिल; हिंदी – सब्जाह, संस्कृत – मंजरीकी) : यह उत्तर-पश्चिम भारत में होती है, किंतु समस्त भारत में इसके पौधे लगाये जाते हैं। यह पौधा ज्वर, खांसी, कृमि, उदर-विकार तथा गठिया में उपयोगी है। पत्तों का रस नासिका तथा त्वचा-रोगों में लाभप्रद है। बीजों के सेवन से क़ब्ज और बवासीर ठीक हो जाते हैं।

तुलसी की पूर्वी अफ्रीका की एक जाति **आसीमुम किलिमंडशारीकुम** (*Ocimum kilimandscharicum* Guerke. अंग्रेजी—'कैंफर-वेसिल') हाल में ही बहुत प्रसिद्ध हो गयी है। इससे कपूर निकाला जाता है। तुलसी की अन्य जातियों से पृथक करने के लिए इसे कपूर-तुलसी कहना चाहिए। इस जाति की कश्मीर, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र, मैसूर, मद्रास व केरल (प्लेट 15) आदि में खेती की जा रही है। लगभग 1,000 मी ऊंचाई तक के स्थान इसकी खेती के लिए उपयुक्त हैं। उत्तर प्रदेश का तराई क्षेत्र इसके लिए उत्तम है।

कपूर औषधि में नाना रूप से प्रयोग होता है, जैसे शरीर की पीड़ा, मोच आदि पर लगाने के लोशन या मरहम में। इनका वर्णन पीछे भी किया जा चुका है (देखे : सीन्नामोमुम कांफोरा—कपूर)।

भारत में कपूर की वार्षिक खपत का अनुमान लगभग 400,000 क्विटल का है। कपूर का आयात भी करना पड़ता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

54. निसोथ

(टरपेथ)

वैज्ञानिक नाम : मेरेमिआ टुर्पेथुम चित्र 19

[*Merremia turpethum* (L.) Shah & Bhatt *syn. Operculina turpethum (L.)* Silva Manso]

(कुल—कनवॉलवुलेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—पिथोरी, निसोथ;
संस्कृत—त्रिपुटी, कालपर्णी;
कन्नड़—विलतिगिडे;
गुजराती—नशोतर;
तामिल—शिवदई;
तेलुगू तेलतेगडा;
पंजाबी—निसोथ;
बंगला—दूधिया-कलमी;
मराठी—निशोत्तर;
अंग्रेजी—'इंडियन-जलप'।

वर्णन

यह एक बड़ा वल्लरी पौधा होता हैं, इसकी शाखाओं में दूध जैसा सफेद रस होता है। जड़ लंबी, शाखित, सरस होती है। शाखाएं सपक्ष होती हैं। पत्ते 4-10 सेमी. लम्बे, 15.7 सेमी चौड़े, अंडाकार, आधार पर हृदयाकार होते हैं। फूल सफेद, 4-5 सेमी लम्बे कीपाकार होते हैं, कई फूल एक साथ गुच्छों में लगते हैं। वाह्यदल लगभग 2 सेमी लम्बे होते हैं, किन्तु पौधे पर फल आने की अवस्था में यह बहुत बड़े हो जाते हैं, और फल को ढक लेते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह लता लगभग 1,000 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग समस्त भारत में उगती है। सुन्दर फूलों की शोभा के लिए यह प्रायः उद्यानों में भी लगायी जाती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

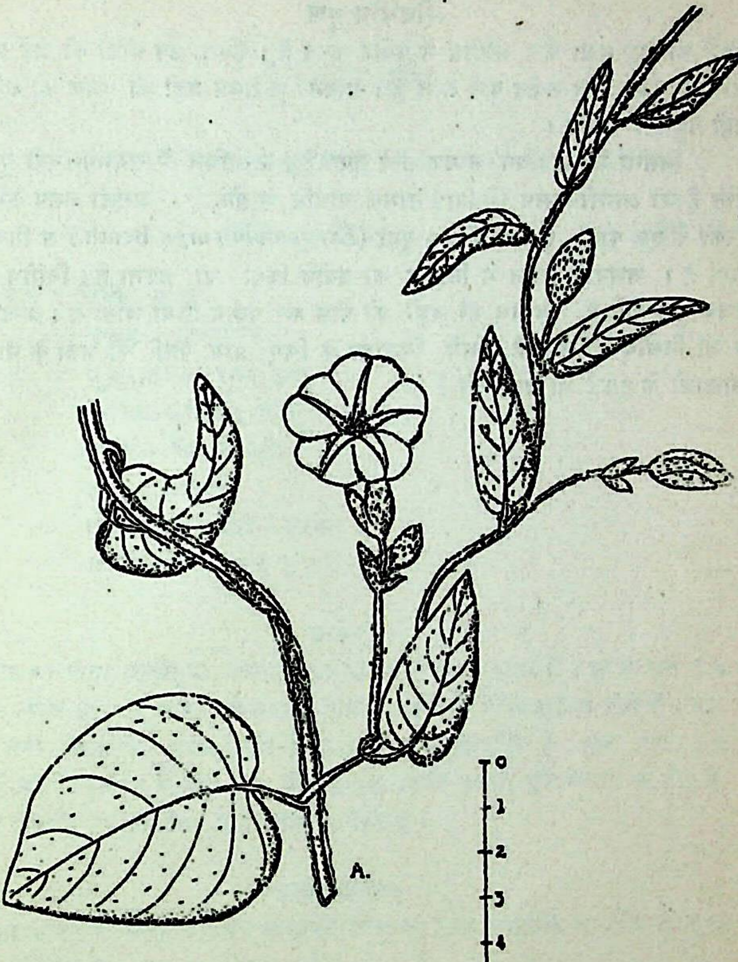

चित्र 19—निसोथ (मेरेंमिआ टुर्पेथुम)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

पौधे की जड़ सुखा कर औषधि में प्रयोग करते हैं। केवल उन पौधों की जड़ें ली जाती हैं, जिन पर सफेद फल आते हैं। खोदने के समय जड़ों की छाल को क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए।

निसोथ में 'टरपेथिन' नामक तत्व होता है। 'टरपेथिन' में लगभग वही गुण होते हैं जो असली जलप (Jalap) नामक औषधि में होते हैं। असली जलप अमेरिका के एक पौधे एक्सोगोनिउम पुर्गा (*Exogonium purga* Benth.) से निकलती है। जलप के स्थान में निसोथ का प्रयोग किया जा सकता है। निसोथ में रेचक गुण होते हैं, निसोथ की जड़ों को पीस कर प्रयोग किया जाता है। बाजार में जो निसोथ मिलता है, उसमें मिलावट के लिए प्राय: पौधे की जड़ों के साथ शाखाओं के टुकड़े भी डाल देते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

55. हरमल

वैज्ञानिक नाम : पेगानुम हारमाला (*Peganum harmala* L.)

(कुल—रुटासिए) **प्लेट 18**

अन्य नाम : हिंदी—गंध्य;
कन्नड़—सीमेगोरंटे;
गुजराती—हरमर, इसपन;
तामिल—सिमाइरवंदी;
तेलुगू—सिमागोरंटी;
बंगला—इस्पंद;
मलयालम, पंजाबी—हरमल।
अंग्रेजी—'वाइल्ड-र्‌यू'।

वर्णन

हरमल का पौधा झाड़ीनुमा, लगभग 30-90 सेमी ऊंचा होता है। इसके पत्ते 5-8 सेमी लम्बे होते हैं, और अनेक छोटी संकरी पालियों में विभाजित होते हैं। फल 2-3 सेमी व्यास के, सफेद, पत्तों के कक्ष में एक-एक होते हैं। फल गोल, 5-8 मिली की संपुटिका में होते हैं। बीज 2 5-4 मिमी लम्बे, भूरे से रंग के होते हैं, उनके छिलके पर जालिका रूपी धारियां होती हैं।

प्राप्ति-स्थान

हरमल भारत के उत्तर व उत्तर-पश्चिमी प्रदेश में, तथा भारतीय प्रायद्वीप के शुष्क क्षेत्रों में होता है।

औषधीय गुण

हरमल के बीज सुखा कर औषधि में काम आते हैं।

बीज में कई एल्केलाइड होते हैं, जो दमा, हिस्टीरिया, गठिया, पित्ताशय में पथरी, ऐंठन व मरोड़े के दर्द, ज्वर, पीलिया और रजोधर्म के समय पीड़ा या रुकावट में लाभप्रद होते हैं। बीज नशीले, स्वापक, कृमिनाशक एवं वमनकारी भी होते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हरमल के बीज से 'हरमलीन' 'यागीन' एवं 'हरमीन' नामक एल्केलाइड निकलते हैं। यह हेलूसिनोजेन होते हैं, इनके सेवन से पिनक-सी आती है तथा मति-भ्रम-'रंगीन दृश्यों' की-सी अवस्था प्राप्त होती है। हरमल औषधि स्नायु-मंडल और मस्तिष्क को उत्तेजित करती है। अधिक सेवन हानिकारक होता है और ज्ञानेंद्रियों को अत्यन्त मन्द और शिथिल कर देता है।

परीक्षणों द्वारा इसके बैक्टीरियानाशक गुण की पुष्टि हुई है, किन्तु मलेरिया-ज्वर के रोगियों पर इसका कोई उपयोग दिखायी नहीं दिया।

अन्य उपयोग

हरमल के बीज से एक लाल रंग प्राप्त होता है। पौधे की जड़ों को पीस कर सरसों के तेल में मिला कर सिर की जूं मारने के काम लेते हैं। यदि पौधे की कुछ शाखाएं कमरे में रखी जायें तो मच्छर नहीं आते।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

56. उतरन

(पेर्गुलारिआ)

वैज्ञानिक नाम : पेर्गुलारिआ डेमिआ प्लेट 16
[*Pergularia daemia* (Forsk.) Chivoc.]

(अस्वीकृत नाम : पेर्गुलारिआ एक्सटेंसा, डेमिआ एक्सटेंसा)

(कुल—एस्कलीपिएडेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—उतर्णी, सदोवनी;
संस्कृत—युगंफला;
कन्नड़—हालुकोरटिगेगिडा;
गुजराती—चमारदूधी, नागलादूधी, वेडलांवल;
तामिल—उत्तमणि;
तेलुगू—दुष्टुपतिगे;
पंजाबी—करियाल;
बंगला—छागलवेटे;
मराठी—उतरनी;
मध्य प्रदेश—कड़वाडोड, घोलककड़ी।

वर्णन

यह एक वल्लरी पौधा होता है, इसके तने रोमिल होते हैं, और उनमें दूध-सा सफेद रस होता है। पत्ते 4-6 सेमी लंबे (या अधिक) अंडाकार या मंडलाकार, नीचे रोमिल, आधार पर हृदयाकार होते हैं। फूल सफेद या हल्के-पीले रंग के होते हैं, और छोटे गुच्छों में लगते हैं। फली 5-8 सेमी लम्बी, 1.3 सेमी मोटी भालाकार, लंबाग्र फॉलीकिल होती हैं। दो फली एक साथ लगती हैं, और नत होती हैं, अर्थात् नीचे को मुड़ी रहती हैं। फलों पर छोटे-छोटे कांटे से होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा 1,000 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग सारे भारत में होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

समूचा पौधा औषधि में काम आता है।

पत्तों का रस सर्दी, जुकाम और अतिसार में दिया जाता है। यह गठिया में, तथा मासिक धर्म रुकने पर दी जाने वाली एक रेचक औषधि में भी डाला जाता है। पत्तों का रस गर्भाशय के लिए बलकारक, कफनिस्सारक तथा वमनकारी है। गर्भाशय पर इसका लाभप्रद गुण परीक्षणों द्वारा सिद्ध हुआ है। यह स्त्री-रोगों में गुणकारी है। उत्तरन में ऐसे उपयोगी तत्व होते हैं, ज़िनमें 'पिटुईट्रिन' जैसी क्षमता होती हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

57. कुटकी

(पीक्रोर्हीजा)

वैज्ञानिक नाम : पीक्रोर्हीजा कुरोंआ प्लेट 19
(*Picrorhiza kurroa* Royle ex Benth.)

(कुल—स्क्रोफुलेरिएसिए)

अन्य नाम : हिंदी—कुरु;
संस्कृत—कटुकी;
कश्मीरी—करू;
गुजराती—कड़ू;
तामिल—कटुकु-रोगिणी;
तेलुगू—कटुक-रोणि;
पंजाबी—काली-कुटकी;
बंगला—कटकी;
मलयालम—कटुक-रोहणी।

वणन

कुटकी का पौधा छोटा होता है, उसके पत्ते 5-10 सेमी लंबे स्पैचुला के आकार के होते हैं; ये शीर्ष पर अधिक चौड़े होते हैं। कुटकी के प्रकंद 15-25 सेमी लम्बे, कड़े होते हैं। फूल छोटे, व पतली स्पाइकों में लगते हैं। फूल दो प्रकार के होते हैं, कुछ में छोटे, केवल 8 मिमी लंबे पुंतंतु होते हैं, दूसरों में 2 सेमी लंबे पुंतंतु होते हैं। फल 1.3 सेमी लंबे होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा कश्मीर से सिक्किम तक केवल हिमालय की 3,000-4,000 मी ऊंची पर्वत-श्रेणियों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

पौधे के प्रकंद सुखा कर औषधि में प्रयोग करते हैं।

यह औषधि कटु, पौष्टिक और पर्यायरोधी होती है। इसके सेवन से पित्त

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अधिक बनता है। इसमें नीलकंठ (जेंशियन) की तरह क्षुधावर्धक गुण होते हैं, यह पाचक रसों का स्रवण बढ़ाती है। यह जलोदर में भी लाभप्रद है।

कुटकी के एंटीबायोटिक गुणों की परीक्षणों द्वारा पुष्टि हुई है।

भारत में कुटकी की वार्षिक खपत लगभग 40 क्विटल है। हिमालय पर्वत की ऊंची श्रेणियां, जैसे 3,000-4,000 मी ऊंचाई वाले स्थान, इस पौधे की खेती के लिए उपयुक्त समझे जाते हैं। क्योंकि कुटकी असली जेंशियन (जेंटिआना लूटेआ *Gentiana lutea* L.) स्थान पर प्रयोग की जा सकती है, यह एक महत्वपूर्ण औषधि है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

58. चीड़

(पाइन)

वैज्ञानिक नाम : पीनुस रॉक्सबुर्घिई (*Pinus roxburghii* Sargent)

(अस्वीकृत नाम : पीनुस लोंगीफोलिआ)

(कुल—पाइनेसिए)

अन्य नाम : असमिया—तेल्लिया;
तामिल—सिमईदेवदारी;
पंजाबी—चील;
बंगला—सरलगाछ ।

इस वृक्ष का वैज्ञानिक नाम रॉक्सबुर्घिई एक प्रसिद्ध वनस्पतिज्ञ डॉ० विलियम रॉक्सबर्घ के सम्मान में दिया गया है । डॉ० रॉक्सबर्घ ने 18 वीं शताब्दी के अन्त से 19वीं शताब्दी के आरम्भ तक भारत में सहस्रों पौधे एकत्रित किये, उनका वर्णन लिखा और अनेक पुस्तकों की रचना की । उन्हें 'भारतीय वनस्पतिशास्त्र का जन्मदाता' कहा गया है ।

वर्णन

चीड़ का वृक्ष काफी बड़ा हो जाता है, उसके पत्ते सूच्याकार होते हैं, और 3 पत्ते एक साथ लगते हैं । नर-कोष छोटी होती है; मादा-कोष 10-50 सेमी लम्बी होती हैं ।

प्राप्ति-स्थान

चीड़ का वृक्ष हिमालय की निचली पहाड़ियों पर तथा अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में होता है । उद्यानों आदि में इसे प्रायः ही लगाने की चेष्टा की जाती है ।

औषधीय गुण

चीड़ तथा इसके वंश के कुछ अन्य वृक्षों से एक राल जैसा (रेजिनी) पदार्थ तारपीन निकलता है । इससे तारपीन का तेल (आयल-आफ-टर्पेंटाइन) निकालते हैं, यह औषधि में काम आता है ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यह तेल लगाने से त्वचा में उत्तेजना पैदा हो जाती है। अत्यंत सीमित मात्रा में सेवन करने से यह उत्तेजक कफनिस्सारक है, और पुरानी खांसी या श्वासनली की सूजन में लाभदायक है। इससे पेट का अफारा व ऐंठन ठीक होते हैं। कुछ मात्रा में यह म्रियादी-ज्वर, मसूड़ों व नाक से खून आना, आदि में भी लाभप्रद है। इसका एनीमा देने से कब्ज दूर हो जाता है।

यह विशेषत: तो गठिया आदि पीड़ा में लगाने के लोशन, लेप व पलास्तर आदि बनाने के काम आता है। तारपीन का तेल सूंघने से ही खांसी-जुकाम में लाभ होता है।

अन्य उपयोग

चीड़ की लकड़ी नाना प्रकार से उपयोगी है। विशेषकर यह चाय की पेटियां, दियासलाई, खेल के सामान, संगीत के सामान, बाजे आदि बनाने के काम आती है।

वेरोजा चूड़ियां बनाने के काम आता है।

छाल में टैनीन तथा कुछ रंग होते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

59. पीपलामूल

(पीपर, लोंग-पैपर)

वैज्ञानिक नाम : पीपेर लोंगुम (*Piper longum* L.)

(कुल—पाइपरेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—पीपल, पीपली;
संस्कृत—मागधी, पिप्पली;
असमिया—पीपलू;
कन्नड़—हिप्पली
गुजराती—पीपली;
तामिल, तेलुगू—पिपिली;
बंगला—पीपुल, जत्या,
जलपाइगुड़ी—शावप्पा।

इसका संस्कृत नाम मागधी यह संकेत करता है कि पौधा मगध देश अर्थात् उत्तर बिहार में मिलता है।

वर्णन

यह एक छोटा सुगंधित पौधा होता है जो प्रायः भूमि पर फैलता है या लता बन कर पेड़ व झाड़ी आदि पर चढ़ जाता है। नीचे के पत्ते 6-10 सेमी लंबे, अंडाकार, आधार पर हृदयाकार होते हैं। ऊपर के पत्ते अंडाकार अथवा दीर्घवत् होते हैं, यह भी आधार पर हृदयाकार होते हैं। पत्ते ऊपर गाढ़े-हरे, चमकदार, नीचे केलई रंग के होते हैं। अनुपर्ण 1.3 सेमी लंबे होते हैं, किंतु शीघ्र ही झड़ जाते हैं। फूल स्पाइकों में आते हैं। स्पाइक गूदेदार, 2.5-4 सेमी लंबी, अंडाकार या दीर्घवत्, काले हरे रंग की, चमकीली-सी होती हैं। फल छोटे, अंडाकार होते हैं और गूदेदार स्पाइकों में धंसे रहते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा भारत के उष्ण क्षेत्रों में होता है; इसकी खेती भी कीज ाती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

पीपर की स्पाइक सुखा कर औषधि में प्रयुक्त होती हैं।

यह पौष्टिक होती है और उत्तेजक सुंघनियों में डाली जाती है। यह पक्षाघात तथा गठिया पर लगाने के लेप में भी पड़ती है। कच्चे फलों को सुखाकर उनका क्वाथ बनाकर पुरानी खांसी या धसका में देते हैं। पके फल सुगंधित, उद्दीपक और वायुसारी होते हैं। परीक्षणों द्वारा पीपर के पत्तों तथा फलों के एंटीबायोटिक गुणों की पुष्टि की गयी है।

1977-78 में लगभग 2 लाख रुपये की पीपलामूल का निर्यात किया गया।

अन्य जातियां

पीपर के वंश की एक अन्य जाति औषधि में अत्यंत उपयोगी है, यह है, काली-मिर्च।

काली-मिर्च (पीपेर नीग्रुम)—*Piper nigrum* L. (अंग्रेजी—'ब्लैक-पैपर' हिंदी—गोल-मिर्च; दखनी-मिर्च; संस्कृत—कफविरोधी; मद्रास—काल्वल्ली) : यह पौधा काफी बड़ा और आरोही होता है, इसकी शाखाएं कड़ी होती हैं। पत्ते बड़े, चौड़े, अंडाकार या मंडलाकार होते है। फूल लंबी, स्पाइकों में आते हैं। फल छोटे, गोल, 6-7 मिमी व्यास के, पहले पीले, पकने पर लाल होते हैं।

कच्चे फलों को सुखा कर औषधि में प्रयोग करते हैं; सूखने पर यह काले रंग के झुर्रीदार, गोल हो जाते हैं और काली-मिर्च कहलाते हैं। ये उत्तेजक वायुसारी, तथा पाचक होते हैं। अधिक मात्रा में लेने से यह शरीर में गर्मी पैदा करते हैं और पसीना आ जाता है। काली-मिर्च मूत्रविरेचक भी है, किंतु यह मूत्रेंद्रियों में जलन पैदा कर सकती है। परीक्षणों द्वारा बीजों में एंटीबायोटिक गुण पाये गये हैं।

काली मिर्च अनेक खाद्य पदार्थों में, मसालों में, पाचक चूर्ण आदि में प्रयुक्त होती है।

1977-78 में लगभग 50 करोड़ रुपए मूल्य की काली मिर्च का निर्यात किया गया।

कबाबचीनी (पीपेर कूबेबा) *Piper cubeba* L.f., अंग्रेजी—कूबेब; हिंदी—शीतलचीनी, सुगंधमरिच) : यह दक्षिण पूर्वी एशिया का पौधा है। इसके फलों से एक तेल निकलता है, जो मूत्रेंद्रियों के रोगों में काम आता है। इस औषधि की भारत में वार्षिक मांग लगभग 200 क्विंटल है। पूर्वी तथा दक्षिण भारत इसकी खेती के लिए उपयुक्त स्थान हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

60. इसपगोल

वैज्ञानिक नाम : प्लांटागो ओवाटा (*Plantago ovata* Forsk.)

(कुल--प्लांटेजिनेसिए) प्लेट 20

अन्य नाम : भारत की भिन्न भाषाओं और क्षेत्रों में इस पौधे को प्रायः इसपगोल, इशवगोल अथवा इस्पगोल ही कहते हैं। यह सभी शब्द संस्कृत के नाम पर आधारित हैं। व्यापार कार्य में भी इस औषधि को इशबगूल ही कहते हैं।

वर्णन

इस पौधे का तना अत्यंत छोटा होता है समूचे पौधे पर घनका या हल्का रोम होता है। पत्ते 8-25 सेमी लंवे व बहुत संकरे होते हैं। फूल अत्यंत छोटे होते हैं, और अंडाकार या वेलनाकार, 1.5-4 सेमी लंवी स्पाइकों में लगते हैं। फल 8 मिमी लंवे होते हैं उनका ऊपरी आधा भाग ढक्कन की तरह अलग हो जाता है। बीज नौकाकार होते हैं, उन पर सफेद झिल्ली, भूसी-सी होती है।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा उत्तर-पश्चिमी भारत के कुछ थोड़े ही स्थानों में स्वाभाविक रूप से उगता है; किंतु इसकी खेती भिन्न प्रदेशों में बड़े पैमाने पर की जाती है।

औषधीय गुण

इसपगोल के बीज औषधि के काम आते हैं। बीजों में एल्बूमेन तथा म्यूसिलेज वहुत होता है, और इसी के कारण इनमें औषधीय गुण हैं।

इसपगोल पुरानी पेचिश में, एमीवा तथा वेसिलरी पेचिश में तथा पुराने अतिसार में वहुत उपयोगी है। यह श्लेष्मक झिल्ली को शांति पहुंचाती है, और कब्ज में लाभप्रद है। प्रयोग करने से पहले, बीज पानी में भिगो दिये जाते हैं, जिससे वह मुलायम हो जायें, और अंतड़ियों में शीघ्र घुल जायें। यदि सूखे बीज अंतड़ियों में बहुत समय तक रुके रह जायें तो जलन पैदा करते हैं, तथा भोजन के पाचन में बाधा भी कर सकते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

बीजों का म्यूसिलेज मल को मुलायम करके फुला देता है और उसके बाहर आने में सहायक होता है।

इसपगोल-की-भूसी—बीजों को मसल कर उनके ऊपर की भूसी छुड़ा ली जाती है, इन्हें फटक कर भूसी अलग कर ली जाती है। भूसी में वही गुण हैं जो बीज में। बल्कि भूसी का प्रयोग अधिक उपयुक्त है क्योंकि इसे न पहले भिगोने की आवश्यकता है, न इसके अंतड़ियों में जलन या रुकावट करने का भय रहता है।

इसलिए प्रायः इसपगोल-की-भूसी का ही प्रयोग होता है।

इनके बीजों के भ्रूण तल में 50% लाइनोलिक एसिड होता है। जो धमिनि काठिन्य में उपयोगी होता है। यह तेल कुसुम के तेल की अपेक्षा अधिक क्रियाशील होता है तथा यह देखा गया है कि यह खरगोश में पित्त के स्तर को घटा देता है।

भारत प्रतिवर्ष पी. ओटावा को 18 करोड़ रुपये मूल्य की भूसी तथा बीज का निर्यात करता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

61. पापरी

(इंडियन पोडोफील्लुम)

वैज्ञानिक नाम : पोडोफ़ील्लुम हेक्सांड्राम (*Podophyllum hexandrum* Royle)
(अस्वीकृत नाम : पोडोफील्लुम एमोडी)

रंगीन प्लेट VII

(कुल—वेर्वेरिडेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—वनबैंगन; पापरी;
कश्मीरी—बनबैंगन;
गुजराती—वेनीवेल;
पंजाबी—बनककड़ी, गलककड़ी;
बंगला—पापरा;
मराठी—पड़वेल ।

वर्णन

यह पौधा छोटा और सरस होता है, इसकी जड़ें व प्रकंद भूमि पर फैल जाते हैं । जिस स्तंभ पर फूल आते हैं वह ऊर्ध्व होता है, उसके शीर्ष के निकट 2 पत्ते निकलते हैं । पत्ते 15-25 सेमी व्यास के, हस्ताकार, दंतुर, 3-5 पालियों में कटे होते हैं । पत्तों पर नीले-फालसई रंग के दाग होते हैं । फूल 2.5-5 सेमी व्यास के, सफेद या गुलावी, प्यालिकाकार, प्रायः अकेले लगते हैं । फल अंडाकार 2.5-5 सेमी लंबे, गहरे लाल रंग के होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा हिमालय की ऊंची पहाड़ियों पर प्रायः 3,000-4,000 मी ऊंचाई वाले क्षेत्रों में होता है । कश्मीर में यह 1,800 मीं ऊंचाई वाले स्थानों में भी उग जाता है ।

औषधीय गुण

पापरी के प्रकंद सुखा कर औषधि में काम आते हैं ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रकंदों में एक राल जैसा (रेज़िनी) पदार्थ 'पोडोफ़िल्लिन' होता है, यह रेचक होता है। इसका प्रभाव धीरे-धीरे किंतु अधिक होता है। अधिक मात्रा में सेवन करने से यह पेट में तीव्र जलन एवं मरोड़ पैदा कर सकता है, इसलिए इसको प्रायः अंगूरशफा (बेलाडोन्ना) या घीकुवार (अलोए-*Aloe*) के साथ मिलाकर देते हैं।

पापरी त्वचा-रोगों में तथा रसौली या गिल्टी पर भी उपयोगी है। कैंसर पर इसका क्या प्रभाव होगा, इस विषय पर शोध कार्य हो रहा है।

अभी भारत में पापरी की वार्षिक खपत लगभग 40 क्विंटल है।

इस वंश की एक अमेरिकन जाति **पोडोफील्लुम पेल्टाटुम** (*Podophyllum peltatum* L.) का भारत में कुछ स्थानों पर रोपण किया गया है। 1,500-3,000 मी ऊंचाई वाले स्थान, जैसे कश्मीर, हिमाचल-प्रदेश, पंजाब, उत्तर-प्रदेश तथा सिक्किम में हिमालय की पहाड़ियों में इसकी खेती की जा सकती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

62. बाबची

(सोरालेआ)

वैज्ञानिक नाम : सोरालेआ कोरीलीफोलिया (*Psoralea corylifolia* L.)

(कुल—फ़ाबेसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—सुगंधकंटक;
उर्दू वकुची;
कन्नड़—वाव ची-गिडा;
हिंदी, गुजराती, मराठी, पंजाबी—वावची;
तामिल—कर्पोकुपी;
तेलुगू—काला-गिजा;
बंगला—लटकस्तूरी, हाकूच ।

वर्णन

इस पौधे की शाखाओं पर घनका ग्रंथिल रोम होता है । पत्ते मंडलाकार होते हैं, उनके नीचे तथा ऊपर दोनों सतह पर सूक्ष्म काली ग्रंथियों के दाने-से होते हैं । फूल छोटे, नीले या बैंजनी रंग के, और पत्तों के कक्ष में लगे गुच्छों में आते हैं । प्रत्येक गुच्छे में 10-30 फूल होते हैं । फल काले, गोल व दीर्घवत् होते हैं । उन पर छोटे गड्ढों के-से घनके निशान होते हैं । बीज एक तथा चिकना होता है ।

प्राप्ति-स्थान

बाबची के पौधे समस्त भारत में बेकार स्थानों में उग आते हैं; इसकी खेती भी की जाती है ।

औषधीय गुण

बाबची के बीज औषधि में काम आते हैं ।

बीज में एक वाष्पशील तेल होता है, जो त्वचा-रोग पैदा करने वाले कुछ बैक्टीरिया या जिवाणु पर अत्यंत प्रभावशाली होता है, इसलिए यह औषधि श्वेत-

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

कुष्ठ तथा कुष्ठ पर लगाने के लिए मरहम, तथा पीने की औषधि बनाने के भी काम आती है। बीज में मूत्रविरेचक एवं कृमिनाशक गुण भी हैं। परीक्षणों द्वारा बाबची के जीवाणुनाशक एवं कृमिनाशक गुणों की पुष्टि की गयी है। बीज का ओलिओरेजिनी अर्क कुछ प्रकार के श्वेत-कुष्ठ पर उपयोगी है। इस कारण इसे 'कुष्ठ-नाशिनी' नाम भी दिया गया है।

बाबची की जड़ दांतों की जड़ें गल जाने पर, तथा इसके पत्ते अतिसार में उपयोगी बताये हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

63. बीजासाल

(इंडियन-कीनो)

वैज्ञानिक नाम : टेरोकार्पुस मार्सूपिउम
(*Pterocarpus marsupium* Roxb.)

(कुल—फ़ावेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—असन, पिआसाल;
संस्कृत—महाकुटज;
कन्नड़—वल्लेहोन्ने;
गुजराती—विवला;
मराठी—होनी;
मलयालम—कीनो ।

इस वृक्ष की छाल में से एक गोंद निकलता है, जिसे कीनो कहते हैं, इसलिए इस वृक्ष को 'कीनो-ट्री' नाम दिया गया है ।

वर्णन

बीजासाल का वृक्ष बड़ा और शोभनीय होता है । इसके पत्ते संयुक्त होते हैं, उनमें 5-7 पत्रक होते हैं । पत्रक 8-13 सेमी लंबे, दीर्घायत अथवा दीर्घवृत्तीय होते हैं । फूल लगभग 1.5 सेमी लंबे, पीले, खुशबूदार, बहुत बड़े गुच्छों में आते हैं । फली 2-5 सेमी लंबी, मंडलाकार-सी सपक्ष होती हैं; उनमें एक बीज होता है ।

प्राप्ति-स्थान

बीजासाल भारत के मध्य तथा प्रायद्वीप भाग में होता है, और प्रायः मिश्रित-पतझड़ी वनों में पाया जाता है । यह गुजरात व महाराष्ट्र आदि में 1,100 मी ऊंचाई के स्थानों तक पहुंच जाता है । वृक्ष पर जब फूल आते हैं, अत्यंत शोभनीय होता है, तथा वनों में, दूर से दिखायी देता है ।

औषधीय गुण

इस वृक्ष के पत्ते फूल व गोंद औषधि के काम आते हैं ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

वृक्ष की छाल में चीरा लगाने से गोंद निकलता है, इसे कीनो कहते हैं। यह स्तंभक होता है, और अतिसार में लाभप्रद है। इसका प्रभाव कत्थे के मुकाबले कम है। यह दांत के दर्द में भी उपयोगी है। कीनो गोंद ज्वर और मूत्र में शक्कर आदि जाने में उपयोगी समझा जाता है। इसके पत्ते मसलकर फोड़ों एवं अन्य त्वचा-रोगों पर लगाये जाते हैं।

बहुत लोगों की धारणा है कि यह वृक्ष मधुमेह में उपयोगी है। इसकी लकड़ी का टुकड़ा रात भर पानी में भिगो देते हैं। प्रातःकाल यह जल रोगी को पिला देते हैं। अभी तक जो परीक्षण किये गये हैं उसमें इस धारणा की पुष्टि नहीं हुई है। अस्पतालों में जिन रोगियों पर इनके परीक्षण किये गये उनमें से केवल 7 प्रतिशत को कुछ लाभ प्रतीत हुआ।

अन्य उपयोग

बीजासा की लकड़ी बढ़िया फर्नीचर, इमारती काम, आदि में उपयोगी हैं।

अन्य जातियां

इस वंश की एक अन्य जाति लालचंदन (टेरोकार्पुस सांटालीनुस *Ptero carpus santalinus* L. f अंग्रेजी—'रेड-सैंडर्सवुड', संस्कृत—रक्तचंदन) भी औषधि में उपयोगी समझी जाती है। सिर के दर्द व सूजन आदि में ठंडक पहुंचाने के लिए इस वृक्ष की अन्तः काष्ठ (हार्टवुड) घिसकर लगाना उपयोगी समझा जाता है। यह वृक्ष दक्षिण भारत में होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

64. सर्पगंधा

(राउवॉल्फ़िआ)

वैज्ञानिक नाम : राउवॉल्फिआ सेर्पेंटीना
(*Rauvolfia serpentina L.* Benth. ex Kurz)

रंगीन प्लेट VIII

(कुल—अपोसाइनेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—छोटा चांद;
संस्कृत—चंद्रिका;
उर्दु—धान-बरुवा;
कन्नड़—सर्पगंधी;
तामिल, मलयालम—चुवन्नाअवलपोरी;
तेलुगू—पातालगंधि;
बंगला—चंद्रा।
मराठी—हरकया;
(सहारनपुर—मूंगा।)

इस पौधे का वैज्ञानिक नाम सोलहवीं शताब्दी के एक जर्मन वनस्पतिज्ञ एवं चिकित्सक लेओनार्ड राउवॉल्फ के नाम पर आधारित है।

वर्णन

सर्पगंधा का पौधा झाड़ीनुमा, 30-75 सेमी ऊंचा, अरोमिल, ऊर्ध्व होता है। एक गांठ पर पत्ते कई और चक्राकार होते हैं; पत्ते 8-20 सेमी लम्बे, आधार पर संकरे होते हैं। डंठल छोटा-सा होता है। फूल लगभग 1.5 सेमी लंबे, पंखुड़ियां सफेद या गुलाबी, पुष्पवृंत गहरे लाल तथा छोटे गुच्छों में होते हैं। फूलों के बाह्य-दल पुंज गाढ़े-लाल रंग के अत्यन्त सुन्दर होते हैं। फल छोटे, गोल, गाढ़े-बैंजनी या पकने पर काले-से होते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्राप्ति-स्थान

सर्पगंधा 1,000 मी ऊंचाई तक के स्थानों में लगभग समस्त भारत में होता है। यह हिमालय के तलहटी प्रदेश में और पश्चिमी एवं पूर्वी घाट की निचली पहाड़ियों में अधिक होता है। यह बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र आदि कई प्रांतों में मैदानी भूमि में भी उग आता है। आम के बागों के आसपास भी यह उगता पाया गया है। भारत के कई स्थानों पर इसकी खेती भी की जा रही है।

औषधीय गुण

सर्पगंधा की जड़ें औषधि में प्रयुक्त होती हैं। जड़ें उखाड़ते समय उनकी छाल को क्षति नहीं पहुंचानी चाहिए! यह जड़ें 3 या 4 वर्ष पुराने पौधों से और शरद ऋतु में निकाली जायें तो अच्छा है।

ऐसा कहा जाता है कि भारत में आयुर्वेदिक चिकित्सा में इस पौधे का ज्ञान लगभग 4,000 वर्ष पूर्व से है। ईसा की दूसरी शताब्दी में लिखी चरक की रचना में तो इसका वर्णन है।

सर्पगंधा की जड़ों में कई एल्केलाइड मिलते हैं। इस औषधि में मुख्यतः शमक निद्रायक, अवसादक एवं रक्तचाप घटाने के गुण हैं। आजकल **सर्पगंधा** बढ़े हुए रक्तचाप तथा पागलपन की चिकित्सा में बहुत प्रयोग होता है। इसका अवसादक प्रभाव अत्यन्त धीमा होता है, इस कारण यह रोग की उग्र अथवा तीव्र (एक्यूट) अवस्था में लाभप्रद नहीं होता। यह औषधि पुराने मानसिक रोगियों को अथवा चिताग्रस्त व्यक्तियों को शांति पहुंचाने के लिए उपयुक्त हैं। इसके सेवन से मस्तिष्क को चैन-सा मिल जाता है। खांसी, दमा तथा अंतड़ियों में जख्म के रोगियों को **सर्पगंधा** का सेवन नहीं करना चाहिए।

सर्पगंधा की जड़ें ज्वर एवं पेट के कुछ विकारों में भी लाभप्रद हैं।

इस औषधि के निर्यात पर अब अंकुश है, 1977-78 में केवल 80 हजार रुपये मूल्य के **सर्पगंधा** का निर्यात हुआ।

इस वंश की एक अन्य जाति **राउवॉल्फिआ टेट्राफील्ला** (*Rauvolfiia tetraphylla* L., जिसका पुराना नाम **राउवॉल्फिआ कानेसेंस** *Rauvolfiia canescens* L, था, भी औषधि में उपयोगी है। इसमें **सर्पगंधा** जैसे ही गुण होते हैं। (प्लेट 24)

सर्पगंधा वंश के पौधों पर बहुत शोध-कार्य किया गया है और अब भी चल रहा है। भारत इस दिशा में सबसे आगे रहा है। किन्तु अब कुछ देशों में **सर्पगंधा** से प्राप्त एल्केलाइड रासायनिक ढंग से भी बना लिये गये हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ऐसा अनुमान है कि भारत में सर्पगंधा की वार्षिक खपत लगभग 12,000 क्विंटल है, इसलिए इसकी खेती बढ़ाना आवश्यक है। यह पौधा भारत में मैदानी या तलहटी प्रदेश में (अत्यन्त शुष्क क्षेत्रों को छोड़कर) कहीं भी उगाया जा सकता है।

पौधों की लगाने की सर्वोत्तम विधि इसकी जड़ों की कटिंग बोना है। यह बीज से या टहनियों की कटिंग से भी उग सकता है। एक एकड़ भूमि से लगभग 6-7 क्विंटल तक जड़ें इकट्ठा की गयी हैं। देहरादून की वन अनुसंधानशाला में दो वर्ष पुराने खेत से प्रति एकड़ तथा इससे भी अधिक जड़ें इकट्ठा की गयी हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

65. रेवंदचीनी

(रहूबर्ब)

वैज्ञानिक नाम : रहेउम एमोडी (*Rheum emodi* Wall. ex. Meissn)

प्लेट 21

(कुल—पोलीगोनेसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—रेवटचीनी;
गुजराती—गमनी-रेवंदचीनी;
बंगला—कोकिमा, रेवांदचीनी;
तामिल, तेलुगू—नत्तूईरेवलचीनी ।

वर्णन

इस पौधे की जड़ व तने बहुत मोटे और मजबूत होते हैं । नीचे वाले पत्ते बड़े, लगभग 60 सेमी व्यास के मंडलाकार होते हैं, उनके डंठल 30-45 सेमी लंबे व काफी मोटे होते हैं । फूल बहुत छोटे, गाढ़े-फालसई रंग के होते हैं, और बहुत बड़े गुच्छे में लगते हैं । फल 1-3 सेमी लंबे, फालसई रंग के होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा हिमालय पर्वत के 3,000-4,000 मी ऊंचाई वाले स्थानों में, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा नेपाल में उगता है ।

औषधीय गुण

रेवंदचीनी के प्रकंद सुखा कर औषधि में प्रयोग करते हैं । एक दूसरी जाति अर्चू (रहेउम वेब्बिआनुम, *Rheum webbianum* Royle) के प्रकंद भी साथ में काम आ जाते हैं ।

6-7 वर्ष पुराने पौधों से, उनके फूलने से एकदम पहले, प्रकंद इकट्ठे किये जाने चाहिए । उनकी छाल को क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए ।

रेवंदचीनी रेचक होती है, इसमें टैनीन भी होते हैं, इस कारण दस्त आने के बाद इसके स्तंभक प्रभाव से फिर कब्ज हो जाता है । कब्ज के पुराने रोगियों के

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

लिए यह औषधि उपयुक्त नहीं है। हल्का-सा कब्ज होने पर यह लाभदायक है। स्तंभक होने के कारण रेवंदचीनी कुछ प्रकार के अतिसार में भी दी जाती है, जैसे आंतों में किसी उत्तेजक पदार्थ से हो जाने वाले अतिसार में।

भारत में रेवंदचीनी की वार्षिक खपत लगभग 40 क्विंटल है। हिमालय की ऊंची श्रेणियां इसकी खेती के लिए उपयुक्त हैं।

अन्य जातियां

ब्रिटेन के मान्य औषध-कोश में र्‌हेउम पामाटुम (*Rheum palmatum* L.) से प्राप्त प्रकंद मान्य समझे गये हैं, किंतु भारतीय जातियों से प्राप्त प्रकंद भी औषधि के लिए उपयुक्त हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

66. अरंडी

(कैस्टर-आयल-सीड)

वैज्ञानिक नाम : रीसीनुस कोम्मूनिस (*Ricinus communis* L.)

(कुल—एउफोर्बिएसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—एरंड;
असमिया—भैंरांडा;
उड़िया—जड़ा;
कन्नड़—हरलू;
गुजराती—दिवेली, एरड़ियू;
तामिल—आमनक्कम;
तेलुगू—एरंडमु;
बंगला—रेड़ी, गांव-भेरेंडा;
मराठी—अरंडी;
मलयालम—आवणक्क।
(किस्तना (आंध्र)—आमदम, पेड्डा-आमदम।)

अरंडी की भिन्न किस्मों को कभी-कभी पृथक नाम भी दिये जाते हैं। जैसे सफेद बीज वाली किस्म को भाटरेंडी, पीले बीज वाली किस्म को जोगिया-रेंडी।

पुरानी पुस्तकों में इस पौधे को चित्रबीज, पंचांगुल एवं वातारि नाम दिये हैं। चित्रबीज इसलिए कहा गया है, क्योंकि बीज का रंग सुन्दर चित्तीदार-सा होता है। पंचांगुल का आशय हस्ताकार, 5 शिरा वाले पत्तों से है। वातारि, अर्थात् वात का अरि; वायुरोग या गठिया का शत्रु।

वर्णन

यह एक झाड़ीनुमा अथवा कभी-कभी वृक्ष सरीखा पौधा होता है। इसके पत्ते बड़े, चौड़े, 7 अथवा 9 पालियों में कटे, किनारों पर दंतुर होते हैं। फूल बड़े होते हैं; और शीर्ष पर लगे बड़े लम्बे, गुच्छों में आते हैं। फल एक संपुटिका होती है, इस पर कांटे होते हैं। बीज दीर्घायत होते हैं, उनका छिलका पपड़ी जैसा होता है। अरंडी की एक किस्म बहुवर्षी एवं वृक्ष जैसी होती है, उसके बीज लाल और बड़े

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

होते हैं; इनका तेल केवल जलाने या मशीनों के पुर्जों में लगाने के लिए उपयुक्त होता है। दूसरी किस्म एकवर्षी होती है, उसके बीज भूरे चित्तीदार होते हैं; इनका तेल औषधि के लिए उपयुक्त होता है। एक अन्य किस्म के पत्ते बैंजनी, लाल-से रंग के होते हैं; यह केवल उद्यानों आदि में शोभा के लिए लगायी जाती है।

प्राप्ति-स्थान

अरंडी का पौधा खेतों की मेंड़ों पर व उद्यानों आदि में बहुत लगाया जाता है। यह जंगली भी हो जाता है। प्रायः बस्तियों के आसपास अथवा बेकार स्थानों में उग आता है।

औषधीय गुण

पौधे के बीज का तेल औषधि में काम आता है। स्वयं तो बीज विषैले होते हैं और 2-3 बीज भी घातक हो सकते हैं।

बीज का तेल, जिसे **अरंडी** का तेल (या कैस्टर-आयल; अपभ्रंश कास्ट्रैल) कहते हैं, तीव्र रेचक होता है। यह दूध या फलों के रस के साथ लिया जाता है। **अरंडी** का तेल आंख में डालने की औषधियों में तथा त्वचा पर ठंडक पहुंचाने के लिए कुछ मरहमों में मिलाया जाता है।

प्रसव की सुविधा के लिए इस तेल का उपयोग बहुत उपयुक्त नहीं है। बल्कि, जहां तक संभव हो, इस तेल का तो रेचक के रूप में भी प्रयोग रजोधर्म के समय तथा गर्भवती स्त्रियों को नहीं करना चाहिए।

अरंडी का तेल गर्भनिरोधी (कंट्रासेप्टिव) जैली व क्रीम आदि बनाने के काम आता है।

(बस्तर के आदिवासी **अरंडी** के पत्तों को शरीर के दुखते हुए 'जोड़ों' पर मलते हैं। वे नये पत्तों को पीस कर रेचक के रूप में प्रयोग करते हैं।)

अरंडी के तेल से निर्मित श्लेष त्वचाशोध के लिए उपयोगी होता है तथा यह एग्जिमा या अन्य त्वचा रोगों का अच्छा रोधक भी है।

1980 में भारत से लगभग 8 करोड़ रुपये का तेल व बीज आदि निर्यात किये गये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

67. चंदन

(सैंडलवुड)

वैज्ञानिक नाम : सांटालुम आल्बुम (*Santalum album* L.)

प्लेट 23

(कुल—सैंटेलेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—संदल;
संस्कृत—मलयज, भोगिवल्लभ;
कन्नड़—श्रीगंध, अगाड़ुगंध;
बंगला, गुजराती—सुखड़;
मराठी, संस्कृत, तामिल, तेलुगू—चंदन, संदल।

वर्णन

यह छोटा या मझोला सदाहरित वृक्ष होता है। इसकी शाखाएं नीचे की ओर झुकी-सी होती हैं। छाल काली व खुरदरी और सुगंधित होती है। पत्ते 4-6 सेमी लम्बे, आमने-सामने लगे होते हैं तथा प्रायः चमकीले होते हैं। फूल छोटे, गुलाबी या बैंजनी रंग के होते हैं, और छोटे गुच्छों में आते हैं। फल गोल 6 मिमी व्यास के सरस, गाढ़े-बैंजनी या काले रंग के होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

चंदन के वृक्ष भारत के प्रायद्वीप में विशेषकर दक्षिण में अधिक होते हैं।

औषधीय गुण

चंदन के अन्दर की लकड़ी (अन्तःकाष्ठ) से प्राप्त तेल औषधि में प्रयुक्त होता है।

इस तेल में मूत्रविरेचक गुण है, यह मूत्रकृच्छ के इलाज में दिया जाता है। इसे मूत्राशय की सूजन, सूजाक और खांसी में भी उपयोगी बताया है। मूत्राशय के क्षय रोग में भी चंदन का तेल लाभदायक बताते हैं।

चंदन की लकड़ी पानी में घिस कर किसी अंग की सूजन, सिर-दर्द और त्वचा रोगों में लगाते हैं। चंदन के बीज का तेल त्वचा के रोगों में लाभदायक है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अन्य उपयोग

चंदन की लकड़ी नाना प्रकार की छोटी-छोटी घरेलू वस्तुएं, खिलौने, आदि बनाने के काम आती है। लकड़ी में बहुत समय तक गंध बसी रहती है। चंदन की लकड़ी का चूरा अगरबत्ती और होम-हवन के चूरे बनाने के काम आता है। चंदन का तेल अनेक सुगंधित साबुन व शृंगार-सामग्री बनाने के काम आता है। इससे कुछ कीटनाशक औषधियां भी बनती हैं।

1980 में लगभग 3-4 करोड़ रुपये का तेल तथा 2.7 करोड़ रुपये की चंदन की लकड़ी व चूरे का निर्यात किया गया।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

68. अशोक

वैज्ञानिक नाम : साराका असोका [Saraca asoca (Roxb.) Dewilde]

अस्वीकृत नाम : साराका ईंडिका (*Saraca indica* आक्ट नान L.)

(कुल—सीसलपीनिएसिए)

अन्य नाम : हिंदी, बंगाली—अशोक;
गुजराती—अशोपालव;
तामिल—असोगम;
उड़िया, मलयालम, मराठी, कन्नड़—अशोक ।

इस वृक्ष का नाम अशोक-वाटिका, जहां रावण ने महारानी सीता को बंदी रखा था, से सम्वन्धित है ।

वर्णन

यह एक छोटा सदाहरित वृक्ष होता है, इसके पत्ते संयुक्त होते हैं, उनमें कई 7-25 सेमी लम्वे, चीमड़ पत्रक होते हैं । पत्ते शाखाओं पर वहुत अधिक संख्या में और घने-घने लगते हैं, जिससे वृक्ष पर हरी चादर का आवरण-सा दीखता है । फूलों में चमकीले नारंगी रंग के सहपत्र होते हैं; फूल घनके गुच्छों में आते हैं । फली 15-25 सेमी लम्वी व चपटी होती हैं उनमें कई बीज होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

अशोक के वृक्ष हिमालय के मध्य व पूर्वी भागों में तथा पूर्व एवं दक्षिण भारत में पाये जाते हैं । यह वहुधा ही उद्यानों व नगरों में सुन्दर फूलों की शोभा के लिए लगाये जाते है ।

औषधीय गुण

अशोक की छाल को सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं ।

यह मासिकधर्म के समय अत्यधिक रजस्राव को रोकती है, इसमें स्तंभक गुण हैं । यह गर्भाशय को शांति पहुंचाती है । गर्भाशय के रक्तस्राव में अरगट (Ergot) के बजाय इसका भी प्रयोग कर सकते हैं ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हाल में वृक्ष की छाल पर नाना प्रकार के परीक्षण करके यह ज्ञात करने का प्रयत्न किया गया कि उनका गर्भाशय के रोगों में वास्तव में उपयोगी प्रभाव है अथवा नहीं। फल संतोषजनक नहीं मिला। यह संभव है कि अशोक की छाल से रोगियों को लाभ इसलिए होता है कि उसमें कुछ ऐसे तत्व हैं जिनका ज्ञान वैज्ञानिकों को अभी नहीं है। अथवा यह भी संभव है कि जिन तत्वों में पृथक-पृथक परीक्षण करने पर लाभ दिखायी नहीं दिया, वही तत्व छाल में एक साथ विद्यमान होने पर लाभप्रद होते हों।

अशोक के फूलों को पानी में पीसकर खूनी अतिसार में देते हैं। अशोक के बीज मूत्र के साथ शक्कर आदि जाने के रोग में उपयोगी बताते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

69. कूथ

(साउस्सूरेआ)

वैज्ञानिक नाम : साउस्सुरेआ लाप्पा (*Saussurea lappa* Clarke)

प्लेट 22

(कुल—आस्टेरेसिए)

अय नाम : संस्कृत—अगद, कुष्ट;
कन्नड़—कोष्ट;
गुजराती—कूथ;
तामिल, तेलुगू—कोष्टम्;
बंगला—कुर;
मलयालम—कोट्टम ।

वर्णन

यह एक बहुवर्षीय पौधा होता है और 2 मी तक ऊंचा हो जाता है। इसके पत्ते बहुत बड़े होते हैं; नीचे वाले पत्ते तो 1-2 मी तक हो जाते हैं। पत्तों के डंठल सपक्ष होते हैं। ऊपर के पत्ते छोटे होते हैं; उनमें कभी तो डंठल होते हैं, कभी नहीं। पत्तों के आधार पर दो पालि होती हैं, जो पौधे के तने को लिपटी-सी होती हैं। फूल लगभग 2 सेमी लंबे, नीले-बैंजनी या लगभग काले रंग के होते हैं, और गोल पुष्पपुंजों में लगते हैं। कई पुष्पपुंज इकट्ठे पत्तों के कक्ष में, अथवा टहनियों के शीर्ष पर, लगे रहते है। कूथ के बीजों पर लंबे-लंबे बाल होते हैं, जिनके कारण बीज बनने में पुष्पपुंज रुई के गोले सरीखे दिखते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा हिमालय की ऊंची पहाड़ियों पर कश्मीर तथा उसके पास के क्षेत्रों में 2,500 से 4000 मी ऊंचाई पर पाया जाता है। जम्मू-काश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश में इसकी कृषि की जाती है, जिससे प्रतिवर्ष लगभग 7000 क्विंटल जड़ें प्राप्त होती हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

कूथ की जड़ों को सुखाकर औषधि में काम लाते हैं।

इस औषधि में एंटीसेप्टिक अथवा निसंक्रामक तथा रोगाणुनाशक गुण हैं। यह दमा, श्वास नली की सूजन, अफारा, उदरशूल, तथा हृदय के कुछ रोगों में उपयोगी है। यह मूत्रविरेचक है। कूथ शरीर की अनैच्छिक पेशियों को शांति पहुंचाता है, शमक है, और इस कारण खांसी, दमा आदि में उपयोगी है। किंतु इसका प्रभाव बहुत स्थायी नहीं होता। यह औषधि त्वचा-रोगों और गठिया में भी लाभप्रद बतायी गयी है।

परीक्षणों द्वारा यह दिखाया गया है कि यदि पहले जड़ों में से पेट्रोल-ईथर में घुलने वाले तत्त्व दूर कर दिये जायें, और तब उनका सार या अर्क बनाया जाये, तो वह श्वासनली के रोगों में अधिक लाभदायक है।

भारत से 1977-78 के दौरान लगभग दो लाख रुपये मूल्य की कूथ-जड़ों का निर्यात किया गया। निर्यात पर अब अंकुश है।

अन्य जातियां

कूथ के वंश की कुछ अन्य जातियां भी हिमालय पर्वत पर मिलती हैं, किंतु उनका औषधि में प्रयोग अत्यंत सीमित है।

हिमालय पर्वत की ऊंची श्रेणियों में हिमाचल प्रदेश से लेकर सिक्किम तक का क्षेत्र कूथ के रोपण के लिए उपयुक्त समझा जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

70. बला

वैज्ञानिक नाम : सीडा कॉर्डीफोलिआ (*Sida cordifolia* L.)

(कुल — मालवेसिए)

अन्य नाम : हिंदी — खरेंटी, कुंगी;
संस्कृत—जयंती;
उड़िया — वड़ियानानला;
कन्नड़—हेत्तूति;
गुजराती — बलादाना; वलवुवारो, वलनां-सावेणां;
तामिल—अरिवलमणङ्प्पुंड्डु;
तेलुगू— चीरुवेड़ा;
बंगला—वेरेला, बला;
मराठी चिकना;
मलयालम—कट्टुरम।

वैज्ञानिक नाम में कॉर्डीफोलिया शब्द का अर्थ है हृदयाकार, यह पत्तों के आकार पर आधारित है।

वर्णन

यह अत्यंत शाखित, फैला हुआ किंतु झाड़ीनुमा पौधा होता है। पौधे के सभी अंगों पर ताराकार रोम होते हैं। पत्ते प्रायः 2-5 सेमी लंबे गोल या अंडाकार, आधार पर हृदयाकार, किनारों पर दंतुर होते हैं। डंठल पत्तों से छोटे होते हैं। फूल पीले, छोटे और एक या कई साथ लगे रहते हैं। फल 6-8 मिमी व्यास के 7-10 अंडपों में विभाजित होते हैं; प्रत्येक अंडप के शीर्ष पर दो शूल होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा लगभग समस्त भारत में पाया जाता है और खेतों, उद्यानों, बस्तियों के आसपास तथा छोटे वृक्षों या झाड़ियों के नीचे प्रायः ही उग आता है।

औषधीय गुण

बला का समूचा पौधा औषधि में काम आता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इसमें पौष्टिक, बलकारक तथा यौन-शक्तिवर्धक गुण बताये जाते हैं। पौधे के बीजों में यह गुण प्रधानतः बताया है। बला की जड़ और अदरक का अर्क ज्वर में उपयोगी है। जड़ की छाल को दूध व शक्कर के साथ (अथवा अलग ही) पीस कर सेवन करना श्वेतप्रदर एवं स्त्रियों के अन्य रोगों, स्नायुमंडल के रोग, आदि में उपयोगी है। जड़ों के रस के प्रयोग से जख्म शीघ्र भर जाते हैं। जड़ की छाल तिल के तेल और दूध में मिलाकर सेवन करने से कुछ प्रकार के चेहरे के पक्षाघात ठीक हो जाते हैं।

पौधे के बीज सूजाक तथा उदरशूल (मरोड़ा) में उपयोगी बताते हैं।

अन्य जातियां

बला के वंश की निम्न जातियों में भी औषधीय गुण होते हैं :

वनमेथी (सीडा आकूटा *Sida acuta* Burm f. संस्कृत—बला) : इसकी जड़ें मूत्र संबंधी एवं ज्ञान-तंतु-संबंधी रोगों, ज्वर में और उदर के विकारों में उपयोगी हैं। पत्तों में भी औषधीय गुण बताते हैं।

श्वेत-वरेला (सीडा र्‌होंबीफोलिया *Sida rhombifolia* L. संस्कृत अति-बला) : यह पौधा गठिया के दर्द तथा श्वासनली के क्षय-रोग में उपयोगी है। इसमें शमक गुण भी होते हैं।

गुलसकरी (सीडा स्पीनोसा *Sida spinosa* L. संस्कृत—नागबला) इस पौधे की जड़ें और जड़ की छाल मूत्राशय की जलन एवं सूजाक में शांति पहुंचाती हैं। यह ज्वर-नाशक एवं पौष्टिक भी है। पत्तों में भी यही औषधीय गुण होते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

71. कटेरी

(कंटकारी)

रंगीन प्लेट IX

वैज्ञानिक नाम : सोलानुम सूरात्तेंसे (*Solanum surattense* Burm f.)

(अस्वीकृत नाम : सोलानुम जांथोकार्पुम)

(कुल—सोलेनेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—रींगणी;
संस्कृत—कंटकारी;
असमिया—कटसरेया;
उड़िया—वृहति बैंगनी;
कन्नड़—रामगुल्ला;
गुजराती—भोयरींगणी पटरींगणी;
तामिल—कंदनगट्टारी;
तेलुगू—छल्लनमुलगा, नेलमुलका;
पंजाबी—कंडियारी, मोकरियान;
बंगला—कंटकारी।

वर्णन

यह एक कंटीला, अत्यंत शाखित पौधा होता है। यह प्रायः भूमि पर फैलता है, कभी-कभी सीधा ऊपर को भी बढ़ता है। नयी शाखाओं पर घनके, सूक्ष्म, ताराकार रोएं होते हैं। समूचे पौधे पर कांटे होते हैं, कांटे पीले, चमकदार, लगभग 1.5 सेमी लंबे होते हैं। पत्ते 10 सेमी तक लंबे होते हैं। उनकी शिराओं पर भी कांटे होते हैं। कई फूल एक साथ छोटे गुच्छों में लगते हैं, यह गुच्छे प्रायः पत्तों के डंठल की दूसरी ओर निकलते हैं। फूल बैंजनी या फालसई-से रंग के लगभग 2 सेमी लंबे होते हैं। फल सरस, 1.5-2 सेमी व्यास के गोल, पीले या केलई रंग के होते हैं; उन पर हरी धारियां होती हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा लगभग सारे भारत में मिलता है और प्रायः सड़कों के किनारे, खुले सूखे मैदानों में और नगरों में कूड़ा-कचरे के आसपास उगता है।

औषधीय गुण

पौधे की जड़ों को सुखा कर औषधि में प्रयोग करते हैं।

यह औषधि खांसी, दमा, छाती का दर्द और कुछ प्रकार के ज्वरों में उपयोगी है। यह मूत्रल है तथा मूत्राशय आदि में पथरी हो जाने पर उपयोगी है। इस औषधि के रोगाणुनाशक गुण परीक्षणों द्वारा सिद्ध हुए हैं। कटेरी के फल अनेक रोगों में उपयोगी समझे जाते हैं, जैसे गले में खारिश, श्वासनली में सूजन, पेशियों में दर्द, ज्वर आदि। किंतु भारत अथवा अमेरिका के मानक औषधि-कोष में इसका उल्लेख नहीं है।

यह जानने के लिए कि इस पौधे में संततिनिरोधक (कंट्रासेप्टिव) गुण हैं अथवा नहीं, पौधे की टहनियों तथा पत्तों से प्राप्त औषधियों से जानवरों पर कुछ परीक्षण किये गये, किंतु कोई सफलता नहीं मिली। कटेरी सर्प काटने पर उपयोगी समझी जाती थी, किंतु परीक्षणों द्वारा यह गुण सिद्ध नहीं हो सका।

(वस्तर के आदिवासी कान के दर्द में, फलों को कुचल कर उनका रस कान में डालते हैं।)

अन्य उपयोग

कटेरी की छोटी पत्तियां तथा फल कच्चे तथा उबाल कर खाने के काम आते हैं।

अन्य जातियां

मकोय—(सोलानुम नीग्रम—*Solanum nigrum* L. बंगाली—गुड़कामाई, काकमाची, कन्नड़—काचीगिड़ा; पंजाबी—पिलक) : यह अनेक औषधियों में प्रयुक्त होती हैं और भारत की सुपरिचित वनौषधि है। समूचे पौधे का क्वाथ पेचिश, अन्य उदर रोग व ज्वर में लाभदायक है, यह मूत्रविरेचक भी है। पौधे का रस फोड़ों तथा अन्य त्वचा-रोगों में उपयोगी है। मकोय के फल बहुत उपयोगी होते हैं। उनमें पौष्टिक, रेचक, तथा क्षुधावर्धक गुण होते हैं। यह दमा, त्वचा-रोग, मूत्र-संबंधी रोग व अत्यधिक प्यास में लाभप्रद हैं। कच्चे हरे, फलों को पीस कर दाद पर लगाते हैं।

इस वंश के दो अत्यन्त सुपरिचित पौधों आलू और बेंगन में औषधीय गुण होते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

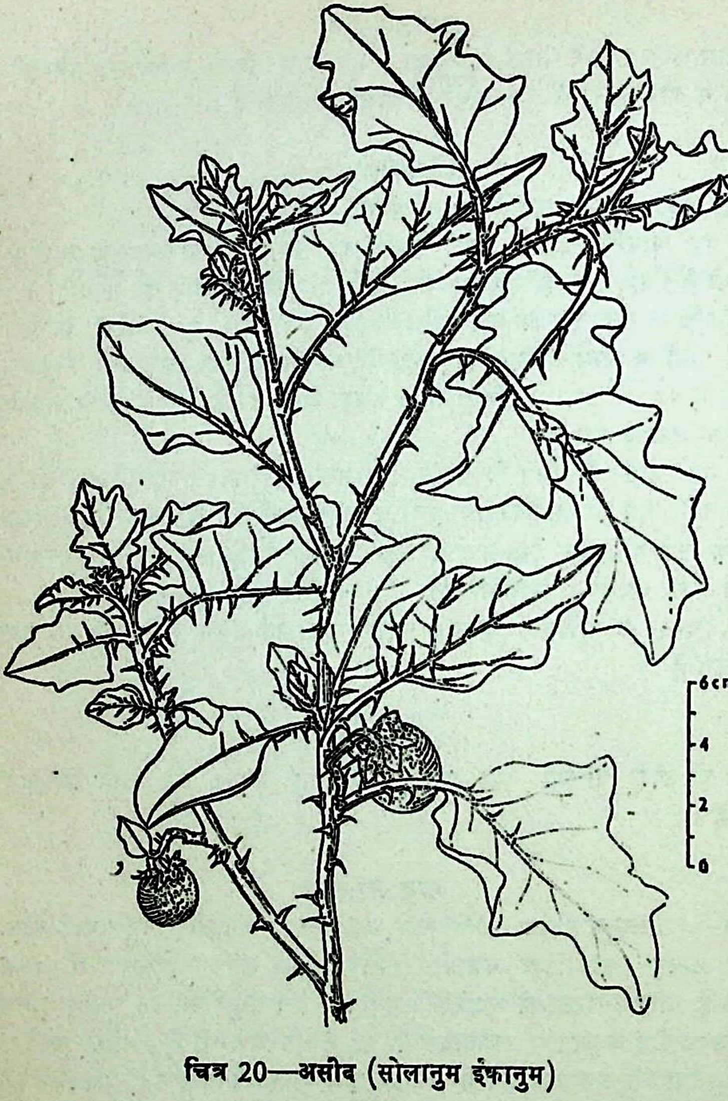

चित्र 20—असीद (सोलानुम इंकानुम)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

आलू—(सोलानुम टूबेरोसुम-*Solanum tuberosum* L.) : जिस जल में आलू उबाले गये हों, वह चेहरे की फुंसियों, जले के जख्मों, तथा त्वचा के फोड़े फुंसियों पर उपयोगी होता है। आलू का स्टार्च त्वचा पर लगाने के मर्हमों में, तथा औषधि की गोलियां बनाने के काम आता है।

बैंगन—(सोलानुमा मेलोंगेना-*Solanum melongena* L.) : बैंगन के कच्चे फल हृदय के लिए बलकारक व क्षुधावर्धक होते हैं। पके फल रेचक होते हैं किंतु उनके सेवन से पित्त का प्रकोप होने की आशंका रहती है। बैंगन के पत्तों को पीस कर आतशक के फोड़ों पर लगाते हैं; जड़ों के सार का सेवन भी उपयोगी बताया है।

हाल में असम तथा भारत के अन्य भागों में पायी जाने वाली एक जाति सोलानुम विआरुम (*Solanum viarum* Dunal—प्लेट 26) ने अत्यन्त प्रसिद्धि पायी है।

इस पौधे में 'सोलेसोडीन' एल्केलाइड बड़ी मात्रा में होता है। इस एल्केलाइड से 'सेक्स हारमोन' बनते हैं। कलकत्ता, बम्बई तथा जोरहट (असम) आदि की कुछ वैज्ञानिक संस्थाओं में इस पौधे पर शोधकार्य चल रहा है।

'सोलेसोडीन' प्राप्त करने ही के लिए एक विदेशी पौधे सोलानुम अवीकुलारे (*Solanum aviculare* Forst.) का कश्मीर में रोपण करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

सोलानुम वंश की अन्य जातियां जिनमें औषधीय गुण बताये जाते हैं, निम्नलिखित हैं :—

असीद—(सोलानुम इंकानुम (चित्र 20—*Solanum incanum* L.) : इसे हिंदी में गागलीभाटा भी कहते हैं।

काकमाची—सोलानुम डुल्कामारा (*Solanum dulcamara* L.)

बृहतिका—सोलानुम इंडिकुम (*Solanum indicum* L.) बंगाली—तीतभेकुरी।

रामबेगुन—सोलानुम फ़ेराक्स (*Solanum ferox* L.) संस्कृत—चंद्रपुष्पा।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation; Chandigarh

72. कड़ाया

वैज्ञानिक नाम : स्टेर्कूलिआ ऊरेंस (*Sterculia urens* Roxb.) प्लेट 25

(कुल—स्टेर्कूलिएसिए)

अन्य नाम : हिंदी—कुलू, गुलू, कड़ई;
उड़िया—ग्रिडोला;
कन्नड़—केंपूदाड़े, भूताली;
गुजराती—कड़ीयो, कंडोल;
तामिल—वेल्लाइपुत्तालि;
तेलुगू—पोणाकु;
मराठी, पंजाबी—कुलू;
मलयालम—तुंडी।
(संथाल प्रदेश—तेलहैच।)

वर्णन

यह एक मझोला पतझड़ी वृक्ष होता है। इसकी सफेद या केलई रंग की चमकदार पतली कागजी-सी छाल दूर से दिखायी देती है। इसके पत्ते बड़े, हस्ताकार 20-40 सेमी व्यास के, 5 पालियों में विभाजित होते हैं। पत्तों की निचली सतह पर घनके रोएं होते हैं। पत्ते शाखाओं के शीर्ष पर अधिक होते हैं। फूल छोटे, पीले या भूरे रंग के होते हैं। यह बड़े, रोमिल गुच्छों में लगते हैं। फल में 4 या 5 बड़े, लाल रंग के, कड़े अंडप होते हैं। इन पर भी घनका रोम होता है; इन बालों को छूने से खुजली आती है।

प्राप्ति-स्थान

यह वृक्ष हिमालय की निचली पहाड़ियों पर तथा पूर्व, मध्य एवं दक्षिण भारत में होता है। यह प्रायः शुष्क या अर्धशुष्क बनों में पाया जाता है।

औषधीय गुण

वृक्ष के तने से जो गोंद निकलता है, उसे कड़ाया या करीरा गोंद कहते हैं। इसी का औषधि में प्रयोग होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

गोंद में रेचक गुण है। त्वचा पर लगाने के लिए कड़ाया गोंद ट्रैगैकैंथ (Tragacanth) के गोंद से भी अधिक उपयुक्त है, यह त्वचा पर अधिक सुहाता है। कंठ रोगों में, नकली दांत बनाने के मसाले में, तथा नाना प्रकार की मीठी गोलियां, चटनी आदि बनाने में ट्रैगैकैंथ गोंद के स्थान पर कड़ाया गोंद का प्रयोग किया जाता है।

(बस्तर के आदिवासी वृक्ष की छाल को कूट कर प्रसव के समय स्त्रियों को देते हैं। उनका विश्वास है कि प्रसव सुविधा से हो जाता है।)

अन्य उपयोग

कड़ाया की लकड़ी इमारती काम में, पैकिंग के डब्बे बनाने में तथा नाना प्रकार की घरेलू वस्तुएं बनाने के काम आती है। वृक्ष की छाल से बहुत मजबूत रेशा निकलता है; यह रस्सी तथा मोटा कपड़ा आदि बनाने के काम आता है। कड़ाया गोंद दाल-भाजी में डालकर खाया भी जाता है। इसके बीज भी खाये जाते हैं।

1980 में 8 करोड़ रुपये का कड़ाया गोंद निर्यात किया गया।

अन्य जातियां

कड़ाया के वंश की दो अन्य जातियां, ऊदल (स्टेर्कूलिआ वील्लोसा-*Sterculia villosa* Roxb. उड़िया—कोदालो) जो लगभग समस्त भारत में पायी जाती है, तथा जंगली बादाम (स्टेर्कूलिआ फेटिडा-*Sterculia foetida* L.) जो दक्षिण भारत में होती है, औषधि में उपयोगी हैं। उदल के गोंद में कड़ाया जैसे ही गुण हैं। जंगली-बादाम के बीज का तेल रेचक होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

73. चिरायता

वैज्ञानिक नाम : स्वेर्टिआ किराइटा [*Swertia chirayita* (Roxb.) Karst.]

(कुल—जेंशिएनेसिए) प्लेट 27

अन्य नाम : संस्कृत—किराततिक्त;
कन्नड़—नेलावेव;
तामिल, तेलुगू—नीलवेंबू;
बंगला—चिरेता;
मराठी—चिरागिता।

वर्णन

यह पौधा एक वर्षीय पौधा होता है। यह कभी-कभी 1.5 मी तक ऊंचा हो जाता है। इसके पत्ते टहनियों की गांठों पर आमने-सामने होते हैं, उनमें डंठल नहीं होते। पत्ते लम्बोतरे, लगभग 10 सेमी लम्बे, निशिताग्र होते हैं। फूल केलई या हल्के फालसई रंग के होते हैं। प्रत्येक दल पर दो हरी ग्रंथियां-सी होती हैं। फल अंडाकार लगभग 6 मिमी लम्बे होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

चिरायता कश्मीर से असम तक, हिमालय-पर्वत में 1,200 से 3,000 मी ऊंचाई वाले स्थानों में होता है।

औषधीय गुण

पुष्पन के समय समूचे पौधे को उखाड़कर सुखा लिया जाता है, यह समूचा औषधि में काम आता है।

चिरायता भारत की सुपरिचित वनौषधि है। यह मुख्यत: ज्वरनाशक, पाचक एवं कृमिनाशक गुणों के लिए प्रसिद्ध है। इसमें वही गुण है जो नीलकंठ (जेंटिआना कूरू) में। ज्वर, अतिसार और दुर्बलता की चिकित्सा में इसका प्रयोग होता है। यह मलेरिया में दिया जाता है। पर हाल के परीक्षणों में ज्वर पर इसका प्रभाव सिद्ध नहीं हुआ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अन्य जातियां

चिरायता के वंश की 7-8 और जातियां भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में मिलती हैं। वह सभी चिरायता की तरह उपयोगी हैं।

भारत में चिरायता की वार्षिक खपत लगभग 400 क्विटल है और इस पौधे की खेती की जानी चाहिए। कश्मीर, हिमाचल-प्रदेश, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश से असम तक के ऊंचे पर्वतीय क्षेत्र इसके रोपण के लिए उपयुक्त बताये जाते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

74. लोध

वैज्ञानिक नाम : सीपलोकॉस रासेमोसा (*Symplocos racemosa* Roxb.)

(कुल—सींपलोकेसिए)

अन्य नाम : संस्कृत, मराठी—लोध्र;
असमिया—लपोंगडांग, डिएंगलमकी;
कन्नड़—बलोड्डि;
गुजराती—लोद्र;
तेलुगू—लोड्डुगू;
बंगला—लोध;
सिंगभूमि—लुड़मदारु ।

वर्णन

यह वृक्ष लगभग 6 मी ऊंचा होता है; इसके पत्ते 8-20 सेमी लम्बे, गाढ़े-हरे रंग के, चर्मिल, प्रायः निशताग्र होते हैं। उनके किनारे सीधे या दंतुर, डंठल छोटे लगभग 8-20 मिमी लम्बे होते हैं। फूल छोटे, लगभग .1.2 सेमी व्यास के सफेद या हल्के पीले रंग के तथा पत्तों के कक्ष में लगे छोटे गुच्छों में होते हैं। फल 1-1.3 सेमी लम्बे, बैंजनी या काले रंग के होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

लोध के वृक्ष मध्य तथा पूर्वी भारत के मैदानी और तलहटी प्रदेशों में पाये जाते हैं।

औषधीय गुण

वृक्ष की छाल निकाल कर तुरन्त सुखा ली जाती है। यह औषधि में काम में आती है।

लोध अपच, नेत्र-रोग तथा फोड़े व ज़ख्मों पर उपयोगी है। यदि मसूड़ों से खून जाता हो तो छाल के क्वाथ से गरारे या कुल्ला करते हैं। फोड़ों को शीघ्र पकाने के लिए छाल की लुग्दी से बनाये हुए मरहम या पलस्तर लगाते हैं। लोध

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

में स्तंभक गुण होते हैं, इस कारण मासिकधर्म में रक्त के अधिक प्रवाह को कम करने के लिए तथा पतले दस्त रोकने के लिए इसका प्रयोग करते हैं। यह फीलपांव तथा पेशाब में चर्बी आने में भी दी जातीं है।

अन्य जातियां

लोध के वंश की एक अन्य जाति सींपलोकॉस पानीकुलाटा (*Symplocos paniculata* Wall.) पंजाब से असम तक पर्वतीय भागों में पायी जाती है। इस वृक्ष को भी उन्हीं स्थानीय नामों से पुकारते हैं जिनमें लोध को। इसकी छाल में भी लोध जैसे गुण बताते हैं; यह पौष्टिक भी बतायी जाती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

75. जामुन

मोसा (
न)

वैज्ञानिक नाम : सीज़ीजियम कूमिनी [*Syzygium cumini* (L.) Skeels]

(अस्वीकृत नाम : .निआ जांबोलाना) चित्र 21

(कुल—मिर्टेसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—जंबूल;
असमिया—जामू, जाँवू;
उड़िया—जामकूक;
कन्नड़—जंबूनेरले;
गुजराती—जांवू;
तामिल—नगई, सांवल;
बंगला—जाम;
मराठी—जांभूल;
मलयालम—यावेल।
(ललितपुर, उत्तर प्रदेश—काठ जामुन)

वर्णन

जामुन का वृक्ष सदाहरित और प्राय: बहुत बड़ा होता है। इसके पत्ते 8-20 सेमी लम्बे, चर्मिल, चिकने तथा चमकदार होते हैं; वह आमने-सामने जोड़े में लगते हैं। जामुन के फूल छोटे, मटमैले सफेद रंग के, बड़े-बड़े गुच्छों में आते हैं। फलों से हम सभी परिचित हैं। वह 1.5-4 सेमी लम्बे, अंडाकार, पहले बैंजनी रंग के, तदुपरांत पकने पर गहरे-जामनी या काले रंग के, सरस, गुठलीदार होते हैं। प्राय: उनमें एक गुठली होती है। जामुन खाने के बाद जीभ पर जामनी गूदे का रंग बहुत समय तक रहता है।

प्राप्ति-स्थान

यह वृक्ष प्राय: नम-पतझड़ी या सदाहरित वनों के आस-पास होता है; यह पानी के निकट अर्थात् नदी-नालों के किनारे अधिक होता है। अधिक शुष्क क्षेत्रों में यह

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

नहीं होता, किन्तु इसके रोपे हुए वृक्ष राजस्थान के अत्यन्त शुष्क क्षेत्रों में भी जल के निकट अथवा उद्यानों में दिखायी देते हैं।

औषधीय गुण

जामुन की छाल, फल तथा बीज (गुठली) औषधि में काम आते हैं।

वृक्ष की छाल स्तंभक होती है और कंठ व ... नली की सूजन, खांसी दमा, पेचिश तथा फोड़े-फुंसी पर उपयोगी है। यह ... साफ करने के लिए तथा गरारे करने के लिए भी उपयोगी है। छाल का ताज़ा रस बकरी के दूध के साथ सेवन करने से अतिसार में लाभप्रद है।

बीज मधुमेह में उपयोगी होते हैं। ... फलों के रस में भी वही गुण है किन्तु बीज अधिक लाभप्रद होते हैं। यह औषधि इंजेक्शन द्वारा लेने पर ही लाभप्रद है, खाने से नहीं। मूत्र की शक्कर को रोकने का गुण (एंटीडाएबेटिक) इसमें बीजासाल से कहीं अधिक है।

अन्य उपयोग

जामुन का फल बड़ी मात्रा में कच्चा ही खाया जाता है। इसकी लकड़ी नाना प्रकार से प्रयोग होती है।

अन्य जातियां

जामुन के वंश का एक अन्य वृक्ष लौंग [सीज़ीजिउम आरोमाटीकुम *Syzygium aromaticum* (L.) Merr. & Perry जिसका पुराना नाम एउजेनिआ कारिओफील्लाटा था] बहुत उपयोगी होता है। इस वृक्ष की कलियों को सुखा लेते हैं। यही लौंग कहलाती और औषधि में प्रयोग होती हैं। लौंग अत्यन्त सुगंधित, उछीपक और वायुसारी होती है तथा पेट का अफारा, अपच वमन व मतली आने के रोगों में लाभप्रद है। लौंग का तेल एंटीसेप्टिक होता है। अर्थात् उसकी उपस्थिति में रोगाणु शीघ्र नहीं बढ़ते या फैलते। यह तेल पेट के मरोड़ व अफारा में भी उपयोगी है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चित्र 21—जामुन (सीज़ीजिउम कूमिनी)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

76. इमली

(टैमारिंड)

वैज्ञानिक नाम : टामारींडुस इंडिका (*Tamarindus indica* L.) चित्र 22

(कुल—सीसलपीनिएसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—आम्लिका;
उड़िया—तेंतुली;
कन्नड़—हुनसेमरा, चिंच;
तामिल—पुलि;
तेलुगू—आम्लिका;
बंगला, गुजराती—आंवली;
मराठी—चिंच, आंवली;
मलयालम—वालमपुली, आम्लम।

वर्णन

इमली का वृक्ष सदाहरित तथा काफी बड़ा होता है। इसके पत्ते संयुक्त होते हैं, उनमें लगभग 10-20 जोड़े छोटे-छोटे पत्रक होते हैं। नये पत्ते हल्के-हरे रंग के होते हैं। फूल हल्के-पीले रंग के होते हैं और उनपर लाल धारियां होती हैं। फूल बड़ी संख्या में आते हैं, और बहार के समय वृक्ष के नीचे फूलों की चादर-सी बिछ जाती है। फली 8-20 सेमी लंबी, 2-3 सेमी चौड़ी, सीधी या हंसिया-सी मुड़ी हुई, गूदेदार, भूरे रंग की होती हैं और वृक्ष पर लटकती रहती हैं। प्रत्येक फली में कई बीज होते हैं। बीज प्रायः कत्थई रंग के व चमकीले होते हैं, और रेशेदार गूदे में लगे रहते हैं। इमली का गूदा खट्टा होता है।

प्राप्ति-स्थान

यह वृक्ष प्रायः मध्य और दक्षिण भारत में होता है। सड़कों के किनारे तथा नगरों व उद्यानों में सारे भारत में ही लगाया जाता है।

औषधीय गुण

इमली का गूदा औषधि में प्रयोग होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चित्र 22—इमली (टामारींडुस इंडिका)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इमली में हल्का रेचक गुण होता है। इससे एक स्वादिष्ट पेय बनाते हैं, जो ज्वर में लाभप्रद होता है। रेचन के लिए या तो इमली को अन्य रेचक पदार्थों के साथ मिलाकर लेते हैं, अथवा इसका अलग ही सेवन करते हैं। इमली के मिश्रण से तीव्र रेचक पदार्थों का गुण कुछ मंद हो जाता है।

अन्य उपयोग

इमली की लकड़ी पर कीड़ा शीघ्र नहीं लगता, इस कारण यह कृषि में काम आनेवाले औजार, घरेलू वस्तुएं, फर्नीचर आदि बनाने के काम में आती है। इसका कोयला गन पाउडर बनाने के काम में आता है। पत्तों से एक पीला रंग निकलता है। फल का खट्टा गूदा पीतल या चांदी के बर्तन साफ करने के लिए बहुत उपयुक्त होता है। इमली के बीज जैम व जेली के उद्योग में काम आते हैं। पिसे हुए बीज लकड़ी जोड़ने के मसाले तथा कपड़ा मिलों में प्रयोग होने वाले स्टार्च बनाने के काम आते हैं।

1980 में लगभग 6 करोड़ रुपये का इमली का गूदा व बीज निर्यात किये गये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

77. बहेड़ा

(बेल्लेरिक-माइरोबलान)

वैज्ञानिक नाम : टर्मिनालिआ बेल्लीरिका [*Terminalia bellirica* (Gaertn.) Roxb.]

(कुल—कॉम्ब्रीटेसिए) रंगीन प्लेट X

अन्य नाम : संस्कृत—तैलफल;
असमिया—भोविआन, हुल्लुच
कन्नड़—तारेमरा;
तामिल—अक्कम, तानरी; ;
तेलुगू—टाडी, टांड्रा, तान्निका;
बंगला, गुजराती, मराठी, पंजाबी—बहेड़ा।
(चटगाँव—बोआरागोटा;
संथल—लोपोन।)

वर्णन

यह एक बड़ा वृक्ष होता है, इसके तने में प्रायः मोटे पुश्ते होते हैं। पत्ते 10-25 सेमी लंबे होते हैं और प्रायः शाखाओं के शीर्ष पर लगे रहते हैं। फूल छोटे, केलई मे रंग के दुर्गंधित होते हैं, और पतली स्पाइकों में लगते हैं। फल 2-3 सेमी लंबे, अंडाकार, भूरे या कत्थई रंग के अत्यंत रोमिल होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

बहेड़ा के वृक्ष पश्चिमी भारत के शुष्क क्षेत्रों को छोड़कर लगभग समस्त भारत में 1,000 मी ऊंचाई तक के प्रदेश में मिलते हैं। यह प्रायः मिश्रित-पतझड़ी वनों में अधिक होते हैं।

औषधीय गुण

बहेड़ा के सूखे फल औषधि में काम आते हैं।

फल अपच, अतिसार आदि उदर रोगों में उपयोगी हैं। यह मस्तिष्क के

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चित्र 23—अर्जुन (टर्मिनालिआ अर्जुन)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

लिए भी लाभप्रद हैं। फलों का पानी नेत्रों पर लगाने से जलन दूर होती है। बहेड़ा बवासीर, कुष्ठ-रोग, जलोदार और ज्वर में उपयोगी है। अधपके फल रेचक होते हैं, किंतु पके, सूखे फलों में बिलकुल विपरीत गुण होते हैं।

बहेड़ा के फल त्रिफला नामक प्रसिद्ध औषधि का एक अंग है। त्रिफला में अन्य दो पदार्थ होते हैं, हर्रा और आँवला। हर्रा का वर्णन नीचे किया है। आँवला के विषय में पिछले एक अध्याय में लिखा जा चुका है।

अन्य उपयोग

बहेड़ा की लकड़ी जल के अंदर शीघ्र नहीं गलती, इस कारण यह नौका आदि बनाने के काम में आती है। अन्य अनेक घरेलू वस्तुएं तथा कृषि के औजार भी इससे बनाये जाते हैं।

फलों में टैनीन होते हैं, इस टैनीन से चमड़ा कमाते हैं, कपड़ा रंगते हैं तथा रोशनाई बनाते हैं।

अन्य जातियां

बहेड़ा के वंश की अन्य कई जातियां औषधि में काम आती हैं।

हर्रा (टर्मिनालिआ चेबूला-*Terminalia chebula* Retz.—अंग्रेजी—चेबुलिक-माइरोबलान, हिंदी—हरड़, हरितकी; तामिल—हरक्कज—प्लेट 29) : यह वृक्ष भी लगभग उस ही क्षेत्र में पाया जाता है जहां बहेड़ा। कुछ पुरानी पुस्तकों में इसे अव्यथा नाम दिया है अर्थात् व्यथा हरनेवाला। यह मझोला या बड़ा वृक्ष होता है, इसके पत्ते 10-20 सेमी लंबे, अंडाकार, निशिताग्र होते हैं। किंतु शाखाओं के शीर्ष पर इकट्ठा नहीं होते, समूची शाखा पर आमने-सामने लगे रहते हैं। पत्तों के आधार पर, नीचे की ओर, दो ग्रंथियां होती हैं। फूल मटमैले-सफेद रंग के होते हैं और शाखाओं के शीर्ष पर लगी स्पाइकों में आते हैं। फल 2-4 सेमी लंबे होते हैं इन पर 5 शिराएं उभरी हुई और स्पष्ट होती हैं।

सूखे हुए फल, हरड़ ही औषधि में काम आते हैं। हरड़ पुराने फोड़े, नासूर व जख्म पर उपयोगी है। मुंह में छाले या सूजन होने पर इसके पानी के गरारे व कुल्ली कराते हैं। हरड़ रेचक भी होती है, यह हृदय के लिए बलकारक होती है, तथा रक्त-चाप पर भी इसका कुछ प्रभाव बताते हैं। पिसी हुई हरड़ से दांतों के मसूड़े मजबूत करने के मंजन बनाते हैं। त्रिफला में डालकर तो हरड़ नाना प्रकार से उपयोगी है। हरड़ का अचार, मुरब्बा, चटनी, चूर्ण आदि भी बहुत प्रयोग होते हैं। यह पाचक मृदु-रेचक बताये जाते हैं।

1977-78 में 40 लाख रुपये से अधिक की हरड़ का निर्यात किया गया। 1980 में यह केवल 15 लाख रह गया।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अर्जुन (टेर्मिनालिआ अर्जुना-*Terminalia arjuna* Wt. & Arn., हिंदी—काहू, कोव्हा; संस्कृत—इंद्रद्रुम—चित्र 23) : यह वृक्ष लगभग सारे भारत में, विशेषकर जल के निकट, नदी नालों के किनारे अधिक होता है। इसकी छाल स्तंभक होती है और ज्वर, हड्डी-टूटने तथा अंदरूनी चोट (गुम चोट) में उपयोगी है; यह हृदय के लिए भी बलकारी है।

इस वृक्ष को कुछ पुस्तकों में नदीसरजा नाम दिया है, अर्थात नदी के किनारे उगने वाला।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

78. गिलो

(टीनोस्पोरा)

वैज्ञानिक नाम : टीनोस्पोरा कॉर्डीफोलिआ
[*Tinospora cordifolia* (Willd.) Hook f. & Th.]

(कुल—मेनीस्पेर्मेसिए)

अन्य नाम : हिंदी—गिलोय;
संस्कृत, तामिल—अमृतवल्ली;
कन्नड़—अमृतबल्ली, अनेवुले;
गुजराती—गड़ो, गलो, गुलवेल;
तेलुगू—गुडुची;
बंगला—गुलंचो;
मराठी—गुलवेल;
मलयालम—अमृतः।
(मद्रास—थिप्पाथेगा।)

वर्णन

यह एक बहुत बड़ी लता होती है, इसकी शाखाएं सरस होती हैं। बरगद की तरह, इसकी शाखाओं में से अनेक जड़ें फूट कर नीचे लटक जाती हैं। शाखाओं पर अनेक छोटी सफेद ग्रंथियां होती हैं। पत्ते 5-10 सेमी लंबे, अंडाकार अथवा मंडलाकर होते हैं, उनमें 7-9 शिराएं होती हैं। डंठल पत्तों से थोड़े ही छोटे होते हैं। फूल बहुत छोटे होते हैं; नर व मादा पुष्प अलग उगते हैं। नर पुष्प सहपत्रों के कक्ष में गुच्छों में लगते हैं, मादा पुष्प अकेले-अकेले उगते हैं। फल बड़ी मटर के दाने के बराबर व लाल होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

गिलो के पौधे भारत के सभी उष्ण क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

औषधीय गुण

गिलो की शाखाएं ग्रीष्म ऋतु में इकट्ठा करके, सुखा ली जाती हैं। शाखाओं की छाल को क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए। यह सूखी शाखाएं ही औषधि में काम आती हैं।

गिलो पौष्टिक और कामोद्दीपक होती है, यह कालिक ज्वरों में भी उपयोगी है। पौधे के तनों और जड़ों से प्राप्त स्टार्च अतिसार और पेचिश-में लाभप्रद है। यह स्टार्च बलवर्द्धक होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

79. बिषखोपड़ा

वैज्ञानिक नाम : ट्रिआंथेमा पोर्टूलाकास्ट्रुम (*Trianthema portulacastrum* L.)

(अस्वीकृत नाम : ट्रिआंथेना मोनोगीना) चित्र 24

(कुल—एज़ोएसिए)

अन्य नाम : हिंदी—लालसाबुनी;
संस्कृत—पुनर्नवी;
कन्नड़—कोम्मे, पसले-सोप्पू, मुच्छूजोनि;
गुजराती—साटोड़ी;
तामिल—शारुन्नई;
तेलुगू—गलीजेरु;
पंजाबी—बिषखपरा;
बंगला—साबुनी ।

वर्णन

यह भूमि पर फैलता हुआ सरस पौधा होता है । इसकी शाखाएं विभाजित हो-हो कर दूर-दूर तक फैल जाती हैं । शाखाएं चतुर्कोण होती हैं । पत्ते शीर्ष पर अधिक चौड़े होते हैं । फूल अत्यंत छोटे होते हैं, और पत्तों के कक्ष में लगे स्पष्ट दिखाई भी नहीं देते । फ़ल भी अत्यंत छोटे होते हैं । फूल की तरह फल भी, कक्ष में छुपे होने के कारण, दूर से स्पष्ट दिखाई नहीं देते । बीज काले रंग के और गुर्दे के आकार के होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा समस्त भारत में पाया जाता है ।

औषधीय गुण

बिषखोपड़ा के पत्ते औषधि में प्रयोग होते हैं ।

पत्तों में 'पुनर्नवीन' नाम का एल्केलाइड होता है । यह मूत्रविरेचक होता है और जलोदर में उपयोगी है । जिगर या गुर्दे के विकारों के कारण यदि शरीर

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

फूल जाता है, उसमें भी बिषखोपड़ा उपयोगी है। इन रोगों की प्रारंभिक अवस्था में तो यह औषधि विशेषकर लाभप्रद है। रोग के पुराने हो जाने पर या बढ़ जाने पर भी यह औषधि लाभप्रद तो होती है, किंतु कभी-कभी यह लाभ स्थायी नहीं होता।

बिषखोपड़ा के पौधे में गर्भपातक गुण हैं अथवा नहीं, इस पर कुछ परीक्षण किये गये हैं। यह गर्भाशय को संकुचित तो अवश्य करता है।

अन्य जातियां

बिषखोपड़ा के वंश की एक जाति गदाबानी (ट्रिआंथेमा डेकांड्रा *Trianthema decandra* L.) भी औषधि में प्रयोग होती है। इसकी जड़ रेचक होती हैं, तथा मासिक धर्म बंद होने पर अथवा फोतों की सूजन में उपयोगी होती हैं। गर्भपातक गुण के लिए इस जाति पर भी परीक्षण किये गये हैं, किंतु अभी तक कोई निश्चित फल नहीं मिला है।

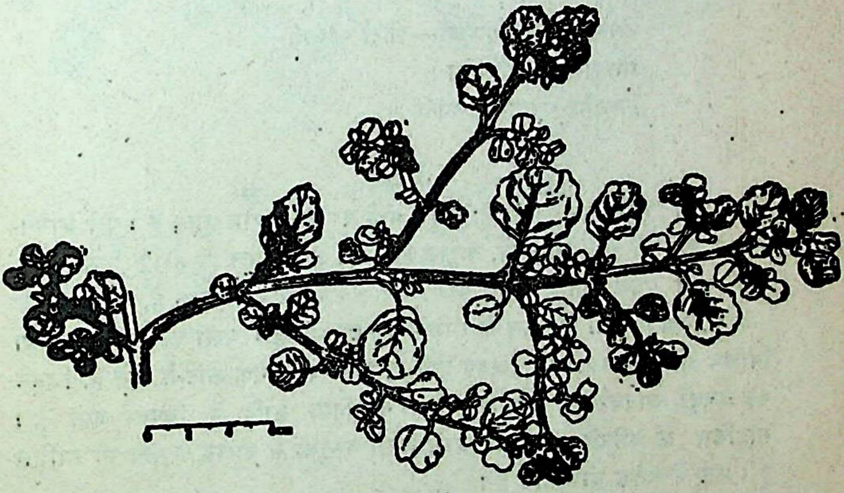

चित्र 24—बिषखोपड़ा (ट्रिआंथेमा पोर्टूलाकास्ट्रम)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

80. गोखरु

वैज्ञानिक नाम : ट्रीबुलुस टेरेंस्ट्रिस (*Tribulus terrestris* L.)

चित्र 25

(कुल—ज़ाइगोफ़ील्लेसिए)

अन्य नाम : संस्कृत—लघु-गोक्षुर;
कन्नड़—नेगलू;
गुजराती—एकांटी, बैठा-गोखरु;
तामिल—नेरुंजी;
तेलुगू—पल्लेरु;
बंगला, मराठी, पंजाबी—छोटा गोखरु;
मलयालम—नेरिंगिल ।
(अजमेर-मेरवाड़—कांटी ।)

वर्णन

यह पौधा भूमि पर फैलता है; समूचे पौधे पर सूक्ष्म रोम होता है । पत्ते आमने-सामने जोड़े में, 5-8 सेमी लंबे, संयुक्त होते हैं । प्रत्येक पत्ते में 8-12 मिमी लंबे, 4-7 जोड़े पत्रक होते हैं । फूल पीले, 1-1.5 सेमी व्यास के होते हैं, और पत्तों के कक्ष में, अथवा पत्तों के डंठल के सामने अकेले लगते हैं । फलों का आकार बड़ा विचित्र होता है; फलों में 5 अंडप होते हैं; फलों पर अनेक कांटे-से होते हैं, जिनसे यह कपड़ों, जानवरों के बालों व गाड़ियों के पहियों आदि में चिपक जाते हैं । साइकिल के पहियों में पंक्चर करने वाली वस्तुओं में गोखरु के फल भी शामिल हैं । फल में अनेक बीज होते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा लगभग समस्त भारत में मिलता है और 3,000 मी ऊंचाई तक के स्थानों में पहुंच जाता है ।

औषधीय गुण

गोखरु के फल ही औषधि में काम आते हैं । गोखरु मूत्र-संबंधी रोगों एवं यौन

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

 Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

दुर्बलता में उपयोगी है। यह शीतल होता है। फलों का क्वाथ गठिया और गुर्दे के रोगों में लाभप्रद है। यह मूत्र-विरेचक भी होता है। इस संबंध में अस्पतालों में रोगियों पर अनेक परीक्षण किये गये हैं, और गोखरु के मूत्रल गुण की पुष्टि हुई है।

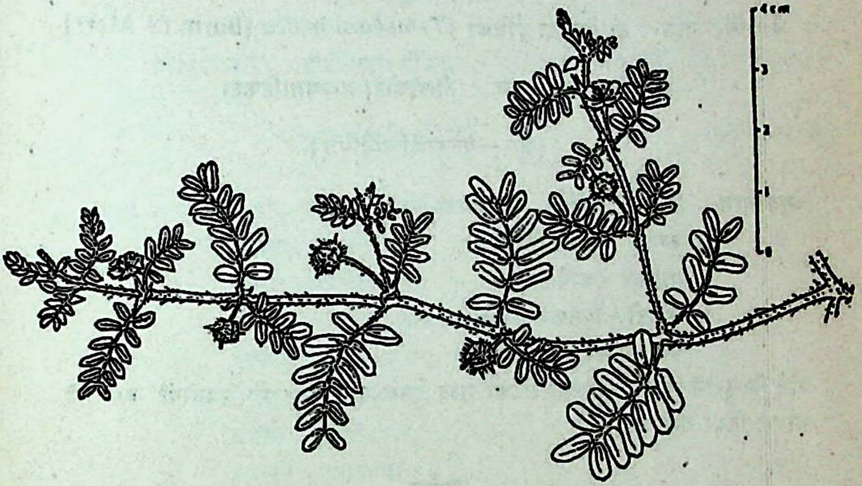

चित्र 25—गोखरु (ट्रिबुलुस टेर्टेस्ट्रिस)

इस पौधे को प्रायः छोटा गोखरु, और पेडालिउम मूरेक्स को वड़ा गोखरु कहा जाता है। औषधि में दोनों प्रयोग होते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

81. अंतमूल

(टीलीफ़ोरा)

वैज्ञानिक नाम : टीलीफोरा इंडिका [*Tylophora indica* (Burm f.) Merr]

(अस्वीकृत नाम : टीलोफोरा आस्थमाटिका)

(कुल—एस्कलीपिएडेसिए)

अन्य नाम : उड़िया—मेंडी;
कन्नड़—आड्मुट्टेदगिडा;
तामिल—कगितम;
मराठी—पितकारी;
मलयालम—वल्लिपाल ।

पौधे के पुराने नाम में आस्थमाटिका शब्द इसके दमा रोग में उपयोगी होने के कारण दिया गया था ।

वर्णन

यह एक आरोही पौधा होता है, इनमें अनेक लंबी सरस जड़ें होती हैं । पत्ते आमने-सामने जोड़े में 5-10 सेमी लंबे, अंडाकार और प्रायः निशिताग्र होते है । फूल बड़े, पीले-से रंग के होते हैं, उनके दलपुंज का भीतरी भाग बैंजनी होता है । फूल छोटे गुच्छों में लगते हैं । फल 5-10 सेमी लंबे, शीर्ष पर नुकीले होते हैं, उन पर कई उभरी हुई धारियां होती हैं । दो-दो फल एक साथ लगते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा मध्य, पूर्वी एवं दक्षिण भारत में पाया जाता है, और प्रायः मैदानी प्रदेश में या 1,000 मी ऊंचाई तक की तलहटियों में होता है ।

औषधीय गुण

पौधे की जड़ों को सुखाकर औषधि में प्रयोग करते हैं ।

अंतमूल को 'ईपेकाक' के स्थान पर भली-भांति प्रयोग कर सकते हैं । इस कारण यह पेचिश की चिकित्सा में विशेष लाभप्रद है । जड़ों का क्वाथ दमा और श्वास-नली की सूजन में दिया जाता है । इसके सेवन से कै (वमन) हो जाती है और खांसी में शांति पड़ जाती है ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

82. जंगली-प्याज

(इंडियन स्कविल)

वैज्ञानिक नाम : ऊर्जीनिआ इंडिका [*Urginea indica* (Roxb.) Kunth]

(कुल—लीलिएसिए) रंगीन प्लेट XI

अन्य नाम : हिंदी—वनप्याज, कोलिकंदा;
संस्कृत—कोलकंद;
कन्नड़—काडुवल्लुलि;
गुजराती—जंगली-कांदो, पेण-कंदो;
तामिल—नरिवेंगायम;
तेलुगू—नक्कवल्लिगड्डु,
बंगला—बोनपियांज,
मराठी—रानकांदा।

वर्णन

यह एक छोटा पौधा होता है, इसमें कंद आता है। कंद 5-10 सेमी व्यास का अंडाकार या गोल, मटमैले सफेद या पीले रंग का होता है। कंद के पास वाले पत्ते काफी लंबे, संकरे और नुकीले होते हैं। स्तंभ सीधा, लगभग 45 सेमी ऊंचा होता है। फूल भूरे रंग के होते हैं और स्तंभ के शीर्ष पर लंबे गुच्छों में आते हैं। फल 1.5-2 सेमी लंबे तथा आधार एवं शीर्ष दोनों ओर संकरे होते हैं। बीज काले होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा उत्तर-पश्चिमी भारत में हिमालय पर्वत के 2,000 मी ऊंचाई वाले प्रदेश से लेकर दक्षिण में केरल तक तथा पूर्व में बिहार तक पाया जाता है।

औषधीय गुण

शल्य-कंद के बाहरी सूखे छिलके हटा दिए जाते हैं। तब कंद के पतले फलके काट कर सुखा लेते हैं, यह औषधि में काम आते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इस औषधि में लगभग वही गुण होते हैं जो तिलपुष्पी में, किंतु इसका प्रभाव कुछ हल्का होता है, और इसलिए इस औषधि का सेवन अधिक मात्रा में करना पड़ता है। जंगली-प्याज उन रोगियों के लिए विशेषकर उपयोगी होता है जिनकी चिकित्सा के लिए तिलपुष्पी का प्रयोग उपयोगी तो होगा, किंतु एलर्जी आदि किन्हीं कारणों से तिलपुष्पी का प्रयोग किया नहीं जा सकता। यह हृदय के रोगों में, खांसी और श्वास-नली की सूजन में उपयोगी है। यह मूत्र-विरेचक भी है।

भारत में होने वाली 'स्कविल' में अर्थात जंगली-प्याज में यूरोपीय स्कविल [ऊर्जीनिआ मारीटिमा *Urginea maritima* (L.) Baker] जैसी ही क्षमता व गुण हैं। अस्पतालों में रोगियों पर किये गये परीक्षणों से यह सिद्ध हो गया है कि जंगली-प्याज पुरानी खांसी व श्वास-नली की सूजन में लाभप्रद है।

ऐसा अनुमान है कि भारत में इस औषधि की वार्षिक खपत लगभग 120 क्विटल है। लगभग समस्त भारत की भूमि व जलवायु इसके रोपण के लिए उपयुक्त है, और कहीं भी इसकी खेती सुविधा से हो सकती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

83. बिल्लीलोटन

(वेलीरिआना)

वैज्ञानिक नाम : वेलीरिआना ऑफ्फीसिनालिस (*Valeriana officinalis* L.)

(कुल—वेलीरिएनेसिए) प्लेट 28

अन्य नाम : हिंदी—बदरंगबोया, जलाकन;
बंगला—कालोवाला;
मराठी—कालावला ।

वर्णन

यह एक बहुवर्षीय पौधा होता है और 1 मी तक ऊंचा हो जाता है। इसकी जड़ तने से भी अधिक मोटी होती है और उसमें से अंतःभूस्तारी (सकर) निकल कर फैलते हैं। तना निचले भाग में रोमिल और ऊपर चिकना होता है, तने में संकरे खांचे-से होते हैं। निचले पत्तों के डंठल अधिक लंबे होते हैं, ऊपर वालों के छोटे। फूल छोटे, सफेद या मटमैले रंग के और शाखाओं के शीर्ष पर छोटे गुच्छों में होते हैं। फल छोटे, चिकने तथा अरोमिल होते हैं।

प्राप्ति-स्थान

यह पौधा केवल कश्मीर के 2,500 मी ऊंचाई के कुछ क्षेत्रों में मिलता है।

औषधीय गुण

इस पौधे की जड़ें और प्रकंद औषधि में काम आते हैं। जड़ों को शरद् ऋतु में इकट्ठा करने, तथा धीरे-धीरे सुखाने से अच्छी औषधि बनती है।

यह औषधि स्नायुमंडल की क्रिया को मंद करती है, और हिस्टीरिया के दौरे, मूर्च्छा, तथा ज्ञानतंतुओं के अन्य विकारों में और पेट के अफारा में उपयोगी है। ताजी जड़ों और प्रकंदों का रस अधिक लाभप्रद होता है, सूखने पर इनका प्रभाव कम हो जाता है।

ताजे रस में स्वापक (नशीले) गुण भी होते हैं और यह अनिद्रा रोग में लाभप्रद होता है, रस से हृदय रोगों की कुछ औषधियां भी बनती हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अन्य जातियां

बिल्लीलोटन के वंश की एक अन्य जाति मुश्कबाला (वालेरिआना वालिचिई *Valeriana wallichii* DC.—संस्कृत—तगर, अंग्रेजी—इंडियन-वलेरियन) हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में कश्मीर से असम तक पायी जाती है। इसमें भी बिल्लीलोटन जैसे ही गुण होते हैं, तथा यह उन सभी रोगों की चिकित्सा में प्रयुक्त होती है।

भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में वलीरियन की कृषि की जा सकती है। 1974-75 में 5 लाख रुपये से अधिक मूल्य की लगभग 67 क्विटल जड़ों का निर्यात किया गया था।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

84. असगंध

वैज्ञानिक नाम : वीदानिआ सोम्नीफेरा (*Withania somnifera* Dunal)

(कुल—सोलेनेसिए) चित्र 26

अन्य नाम : हिंदी—अश्वगंध;
कन्नड़—हिरेमद्दिनेगिड;
गुजराती—आसुन, घोड़ा-आसोड, सांठियाना-पोपटा;
मलयालम—अमुक्किरम ।

वर्णन

यह एक छोटी या मझोली झाड़ी होती है, कभी-कभी असगंध के पौधे 1.5 मी तक ऊंचे हो जाते हैं । इसके तने और शाखाओं पर सूक्ष्म ताराकार रोम होता है । पत्ते लगभग 10 सेमी तक लंबे, अंडाकार, रोमिल होते हैं । फूल केलई रंग के, छोटे, लगभग 1 सेमी लंबे होते हैं और पत्तों के कक्ष में लगे छोटे गुच्छों में लगते हैं । फल 6 मिमी व्यास के, गोल, चिकने व लाल होते हैं । फल बाह्यदलपुंज के अन्दर ढके रहते हैं ।

प्राप्ति-स्थान

असगंध प्रायः भारत के शुष्क स्थानों में मिलता है, इसकी खेती भी की जाती है ।

औषधीय गुण

असगंध की जड़ें औषधि में काम आती हैं ।

असगंध क्षयरोग, दुर्बलता और गठिया में प्रयोग होती है, यह मूत्रल है, तथा इसमें स्वापक एवं अवरोधनाशक गुण भी हैं । जड़ों को पीस कर या घिस कर फोड़े, जख्म और सूजन पर लगाते हैं ।

परीक्षणों द्वारा जड़ों एवं पत्तों के एंटीबायोटिक तथा एंटीबैक्टीरियल गुणों की पुष्टि हुई है ।

अन्य जातियां

असगंध के वंश का एक पौधा आकरी (वीदानिआ कोआगुलेंस—*Withania coagulens* Dunal—पंजाबी—खमजीरा) भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में मिलता है । इसके फल पाचन-संबंधी तथा जिगर के विकारों में उपयोगी होते हैं ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

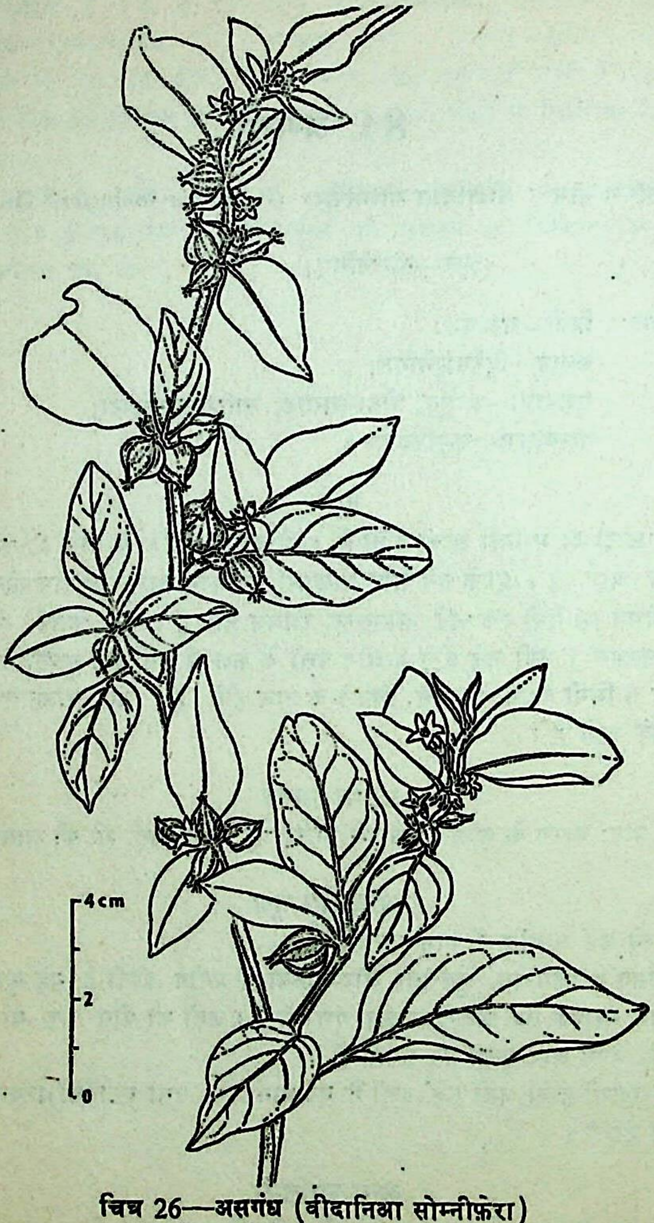

चित्र 26—असगंध (वीदानिआ सोम्नीफ़ेरा)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

संदर्भ-सूची

अधारकर, एस० पी०—1953 : गज़ेटियर, बंबई स्टेट—ए, बॉटनी, भाग I मेडिसिनल प्लांट्स, बम्बई ।

उपहोफ़, जे० सी०—1959 : डिक्शनरी ऑव इकॉनॉमिक प्लांट्स, न्यूयार्क ।

कविरत्न, अविनाशचंद्र : इंगलिश ट्रांसलेशन आव चरक-संहिता, कलकत्ता ।

कीर्त्तिकार, के० आर० एवं बी० डी० बसु—1935 : इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स, भाग 1-4, इलाहाबाद ।

गुप्त, आर०—1972 : "आगामी भारतीय आर्थिक फसलों के रूप में अत्यावश्यक औषधि एवं तेल वाले पौधे" । भारतीय फार्मेसी, 33 ।

चोपड़ा, रामनाथ—1958 : इंडीजिनस ड्रग्स ऑव इंडिया (1933 के संस्करण से संशोधित), कलकत्ता ।

चोपड़ा, रामनाथ; आर० एल० बधवार एवं एस० घोष—1949 : पाइज़नस प्लांट्स ऑव इंडिया, नयी दिल्ली ।

चोपड़ा रामनाथ एवं आई० सी० चोपड़ा—1955 : ए रिव्यू ऑव वर्क ऑन इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स, नयी दिल्ली ।

चोपड़ा, रामनाथ; आई० सी० चोपड़ा तथा बी० एस० वर्मा—1969 : सप्लीमेंट टू द ग्लॉस्सरी ऑव इंडियन मेडीसिनल प्लांट्स, नयी दिल्ली ।

चोपड़ा, रामनाथ; एस० एल० नायर एवं आई० सी० चोपड़ा—1959 : ग्लॉस्सरी ऑव इंडियन मेडीसिनल प्लांट्स, नयी दिल्ली ।

जैन, सुधांशुकुमार—1963 : स्टडीज़ इन इंडियन एथनोबॉटनी—प्लांट्स यूज्ड इन मेडिसिन बाइ ट्राइबल्स ऑव मध्य प्रदेश, बुलेटिन रीजनल रिसर्च लैबोरेटरी जम्मू 1 (2) 126-128 ।

जैन, सुधांशुकुमार—1965 : ऑन दि प्रोस्पेक्ट्स ऑव सम न्यू ऑर लेस नोन मेडिसिनल प्लांट रिसोर्सेज, इंडियन मेडिकल जर्नल 59, 270-272 ।

जैन, सुधांशुकुमार—1965 : मेडिसिनल प्लांट-लोर ऑव दि ट्राइबल्स ऑव बस्तर (मध्य प्रदेश), इकॉनॉमिक बॉटनी 19, 236-250 ।

जैन, सुधांशुकुमार—1967 : वनस्पतिकोश-उपयोगी पौधों का हिंदी-लैटिन कोश दिल्ली ।

जैन, सुधांशुकुमार—(संपा०) 1981 : ग्लिम्पसेज ऑफ इंडियन एथनोबोटनी, ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जैन, सुधांशुकुमार एवं चित्तरंजन तरफदर—1963 : स्टडीज इन इंडियन एथनो-वॉटनी—नेटिव प्लांट रेमेडीज फॉर स्नेकवाइट अमोंग दि आदिवासीज़ आव सेंट्रल इंडिया, इंडियन मेडिकल जर्नल 59, 307-309।

जैन, सुधांशुकुमार एवं चित्तरंजन तरफदार—1970 : मेडिसिनल प्लांट-लोर आव दि संथाल्स : इकॉनॉमिक बॉटनी 24, 241-278।

ठाकर, जयकृष्ण-इंद्राजी—1926 : श्री कच्छस्वथास्ननी वनस्पतियों अने तेना उपयोगिता, बम्बई।

त्रिवेदी, कृष्णप्रसाद—1961-67 : धन्वंतरि, वनौषधि विशेषांक, भाग 1-4 अलीगढ़।

दत्त, यू० सी०—1870 : दि मैटीरिया मेडिका ऑव दि हिंदूज, कलकत्ता।

दस्तूर, जे० एफ०—1951 : मेडिसिनल प्लांट्स ऑव इंडिया एंड पाकिस्तान, बंबई।

नादकर्णी, ए० के०—1954 : डॉ० के० एम० नादकर्णीज, इंडियन मैटीरिया मैडिका, का संशोधित संस्करण, बम्वई।

बिस्वास, के० पी०—1956 : कॉमन मेडिसिनल प्लांट्स ऑव दार्जीलिंग एंड दि सिक्किम हिमालयाज़; कलकत्ता।

विस्वास, के० पी० एवं ई० घोष—1950-52 : भारतीय वनौषधि, भाग 1.2 कलकत्ता।

बी० पी० सी०—1963 : ब्रिटिश फार्मेस्यूटिकल कोडेक्स; लंदन।

भंडारी, चंद्रराज—1951-57 : वनौषधि चंद्रोदय, भाग 1-10, वाराणसी।

भटनागर, एस० एस० आदि—1961 : बायोलोजिकल एक्टीविटी ऑव इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स, इंडियन जर्नल ऑव मेडिकल रिसर्च 40, 799-813।

भटनागर, एस० एस० आदि—1961 : फ़िज़ियोलोजिकल एक्टीविटी ऑव इंडियन मेडिसिनल प्लांट्स, जर्नल ऑव साइंटिफ़िक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च, परिशिष्ट, 20 ए; 1.24।

भारत की संपदा, अर्थात् वैल्थ आव इंडिया (रॉ मैटीरियल्स) 1948-66 भाग 1-7; नयी दिल्ली।

भिषगरत्न, कुंजलाल—1907-16 : इंगलिश ट्रांसलेशन ऑव सुश्रुत-संहिता; कलकत्ता।

मजूमदार, गिरजाप्रसाद—1927 : वनस्पति-प्लांट्स एंड प्लांट-लाइफ इज इन इंडियन ट्रीटाइजेस एंड ट्रैडीशंस, कलकत्ता।

महेश्वरी, पंचानन एवं उमराव सिंह—1965 : डिक्शनरी ऑव इकॉनॉमिक प्लांट्स इन इंडिया, दिल्ली।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

मुखर्जी, बी० — 1953 : दि इंडियन फार्मेस्यूटिकल कोडेक्स, नयी दिल्ली ।

म्हास्कर, के० एस० एवं जे० एफ़० कायुस—1931 : इंडियन प्लांट रेमेडीज यूज्ड इन स्नेक-बाइट, इंडियन मेडिकल रिसर्च मेमायर्स, 19 ।

यू० एस० डी०—1955 : यूनाइटेड स्टेट्स डिस्पेंसेटरी, फ़िलाडेल्फ़िया ।

वाट, जार्ज—1889-93 : ए डिक्शनरी ऑव इकॉनॉमिक प्रोडक्ट्स ऑव इंडिया, भाग 1-6, कलकत्ता ।

वीरमानी, ओ० पी० आदि — 1980 : करेंट स्टेटस ऑफ मेडिसिनल प्लांट इंडस्ट्री इन इंडिया, इंडियन ड्रग्स 17 (10) 318-340 ।

व्रेन, आर० सी०—1950 : पाटर्स साइक्लोपेडिया ऑव बॉटनिकल ड्रग्स एंड प्रिपेरेशंस (संशोधित संस्करण), लंदन ।

व्हिटने, डब्लू० डी०—1962 : अथर्व-वेद संहिता, भाग 1-2, वाराणसी ।

शाह, एन० सी०—1981 : नीड ऑफ सिस्टेमेटिक कल्टिवेशन एंड कलेक्शन ऑफ मेडिसिनल हर्ब्स, इंडियन ड्रग्स, 18 (6), 210-217 ।

संतापाऊ, हेरमेनगिल्ड—1963 : फ्लोरा आफ खंडाला आन वैस्टर्न घाट्स ऑव इंडिया, रेकार्ड्स बॉटनिकल सर्वे ऑव इंडिया 16 (1) 1-335 ।

संदरराज, डेनियल एवं जी० बालसुब्रामण्यम—1959 : गाइड टु इकॉनॉमिक प्लांट्स ऑव इंडिया, मद्रास ।

सत्यवती, जी० वी० आदि, (संपा०)—1976 : मेडिसिनल प्लांट्स ऑफ इंडिया, भाग 1 इंडि० काउं० मेडिकल रिसर्च, नई दिल्ली ।

नोट : इन संदर्भों के अतिरिक्त अनेक पत्रिकाओं, आदि से सामग्री ली गयी है । विशेषतः निम्न वैज्ञानिक पत्रिकाओं में छपी सामग्री उपयोगी पायी गयी ।

इंडियन जर्नल ऑव फार्मेसी;

इंडियन जर्नल ऑव मेडिकल रिसर्च;

इंडियन जर्नल ऑव साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इस पुस्तक के लेखक डा० सुधांशु कुमार जैन बोटेनिकल सर्वे आफ़ इंडिया के निदेशक हैं। पिछले तीस वर्षों से वह भारत की वनस्पति पर शोध कर रहे हैं। उन्होंने अनेक आदिम जाति क्षेत्रों में औषधि और खाद्य आदि में प्रयुक्त पौधों का अध्ययन किया है। उन्होंने लगभग दस पुस्तकें और दो-सौ शोधपत्र लिखे हैं, जिनमें औषधि जड़ी बूटियें, सर्वेक्षण, वनस्पति नामकरण, पौधों का संरक्षण तथा लुप्तप्राय पौधे जैसे विषय शामिल हैं।

आप हिन्दी में भी लिखते हैं और आपने राजस्थान तथा मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी के लिए वैज्ञानिक पुस्तकों के अनुवाद भी किये [illegible]

प्रस्तुत पुस्तक सामान्य पाठकों को ध्यान में रख[illegible] सुबोध भाषा में लिखी है। इसमें लगभग सौ किस्म के [illegible] नाम, वर्णन, प्राप्ति स्थान और औषधीय गुण आदि [illegible]कारी दी गयी है।

रु. 19.00

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida